M.A. 902

1034

तेल-फसलों की खेती

डा० नारायण दुलीचंद व्यास

J781
152J7

सस्ता साहित्य
प्रकाशन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोक-फसलों की खेती

कपास, जूट, तंबाकू आदि द्रव्य-दायी फसलों

की

खेती की रीति

डॉ० नारायण दुलीचंद व्यास

१९५७

सस्ता साहित्य प्रकाशन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशकीय

हमारा देश कृषि-प्रधान देश है। यहां की अधिकांश आबादी खेती-बारी का धंधा करती है। वस्तुत: सारे धंधों में खेती का स्थान बहुत ऊंचा है। बिना अन्न के जीवन ही नहीं चल सकता।

लेकिन खेद है कि हिंदी में कृषि-विषयक साहित्य जितना होना चाहिए, उतना नहीं है, विशेषकर ऐसी पुस्तकों का अभाव तो बहुत ही खटकता था, जो प्रामाणिक रूप से खेती के बारे में विस्तृत और पूरी जानकारी दे सकें। हमें हर्ष है कि 'मंडल' से अन्न, फल, साग-सब्जी, दलहन, तिलहन आदि की खेती के बारे में कई महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उनमें से कुछ के तो एक से अधिक संस्करण हुए हैं। प्रस्तुत पुस्तक में कपास, जूट, तंबाकू, ईख आदि की खेती की रीति बताई गई है। इनके लेखक अपने विषय के विशेषज्ञ हैं और परिश्रम से उन्होंने इन पुस्तकों की सामग्री प्रस्तुत की है।

हमें विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर उन व्यक्तियों को तो लाभ होगा ही, जो खेती के काम में संलग्न हैं अथवा जिनकी इस कार्य में रुचि है, लेकिन साथ ही इसके अध्ययन से सामान्य पाठकों को भी अनेक ज्ञातव्य बातें मालूम होंगी।

—मंत्री

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय-सूची

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोक-फसलों की खेती

: १ :

कपास

Cotton, *Gossypium (Varieties)*

वर्तमान समय में मनुष्यों के वस्त्रों की आवश्यकता भी वैसी ही है जैसी अन्न की। अधिकांश वस्त्र सन, ऊन, रेशम और सूत के होते हैं परंतु इन सबमें सस्ते वस्त्र सूत के ही बनते हैं जो कपास से तैयार किया जाता है। प्राचीन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि सबसे पहले वस्त्रों के लिए कपास का उपयोग भारतवासियों ने ही किया था। मोहनजोदड़ो (Mohenjodaro), जो सिंध प्रांत में सिंधु नदी की घाटी में है, उसकी खुदाई में वस्त्र भी मिले हैं। इससे अनुमान होता है कि आज से पांच हजार वर्ष पूर्व भी भारतवासी कपास के कपड़े बनाते थे।

कपास का पौधा जाति अनुसार दो फुट से लेकर सात-आठ फुट ऊंचा होता है और देवकपास जिसकी रुई पूजन या जनोइयां बनाने के काम मे आती है उसका पौधा तो आठ-दस फुट ऊंचा हो जाता है। ऐसे पौधे या पेड़ बहुधा बगीचों में या घरों के आसपास बाड़ियों में पाये जाते हैं। कपास के पौधे कुछ जातियों के अधिक फैलनेवाले और कुछ के सीधे होते हैं। पत्ते किसी-किसी जाति के बड़े और मुलायम होते हैं तो किसी के छोटे और खुरदरे भी होते हैं। पत्तों का किनारा कटा हुआ होता है। किसी-किसी जाति में तो यह इतना गहरा होता है कि बीच की नस तक पहुंच जाता है। फूल जाति अनुसार पीले या सफेद लेकिन मुंह पर कुछ गुलाबी रंग के होते हैं। सफेद फूल खिलने के बाद धीरे-धीरे रंग भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वदलते हैं। गर्भाधान के वाद फूल का दल चक्र कुम्हलाकर तीन-चार दिन में गिर जाता है। फल वड़ी सुपारी के आकार के नोकीले होते हैं जिनमें जब वीज और कपास वन जाता है तो वे फट जाते हैं और कपास नीचे लटक जाता है। प्रत्येक फल के जाति अनुसार तीन-चार भाग होते हैं जो एक-दूसरे से पतली झिल्ली से जुदे किये हुए होते हैं। प्रत्येक में से एक पूमा (कपास) लटक जाता है। वीज पाव इंच से लेकर आधा इंच से कुछ कम लंबे होते हैं। वीज से लगी हुई रुई का रेशा जाति अनुसार आधा इंच से लेकर सवा इंच लंबा होता है।

वनस्पति विज्ञानानुसार भारत में होनेवाले कपास के थोड़े-वहुत भेद-भाव भावानुसार कई वर्ग हो सकते हैं, परंतु मुख्यतः उन्हें चार भागों में बांट सकते हैं :—

'गासीपियम हिरस्युटम' *Gossypium hirsutum*

इस जाति के पौधे दो-तीन फुट ऊंचे होते हैं और अन्य वर्गों के पौधों के पत्तों से इसके पत्ते वड़े होते हैं। पत्तों का किनारा कम कटा हुआ होता है। पत्ते होते भी वहुत हैं। फूल पीले होते हैं। फल वड़े और चार-चार खाने वाले होते हैं। वीज से रुई सफाई से नहीं छूटती। कुछ रुई वीज के साथ चिपकी हुई रहती है। भारत में ऐसे कपास को अमेरिकन कपास कहते हैं। पंजाव और सिंध की कुछ नंवरी जातियां, मध्यप्रदेश की वूरी, मद्रास की कंवोडिया, वंवई का धारवार अमेरिकन आदि नामवाले कपास इस वर्ग के हैं। ऐसे कपास में रुई लगभग तीस शतांश तक रहती है। रुई के रेशे की लंवाई लगभग एक इंच होती है।

'गासीपियम वारबेडेनसिस' *Gossypium barbadensis*

इसके पौधे उपर्युक्त दोनों से कुछ ऊंचे होते हैं। अच्छी उपजाऊ भूमि में लगभग पांच फुट की ऊंचाई तक वढ़ जाते हैं। इस वर्ग के पौधों का फैलाव पहले दोनों से कम होता है और पत्ते अधिक कटे हुए होते हैं। इनमें पौधों का धड़ और टहनियां सीधी न होकर कुछ टेढ़ी-मेढ़ी होती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। फूल पीले रंग के जिनका ऊपरी भाग हलका बैंगनी रंग का होता है। फल अधिकांश चार खानेवाले होते हैं। रुई का रेशा एक इंच से कम लंबा होता है। इस वर्ग के कपास गुजरात की तरफ अधिक होते हैं। स्थानीय नाम वागड़, भड़ूच, लालियो, कुमरा इत्यादि हैं।

'गासीपियम आरबोरियम' *Gassypium arboreum*

इसका पौधा उपर्युक्त तीन वर्गों के पौधों से ऊंचा होता है। पत्ते सबसे अधिक कटे हुए होते हैं। फूल बड़े और सफेद होते हैं और मुंह पर कुछ लाल या बैंगनी-सा रंग रहता है। फल अधिकांश तीन खानेवाले होते हैं और भूरे रोएं वाले होते हैं। रुई का रेशा एक इंच से कम लंबा होता है।

भारतवर्ष में आरबोरियम जाति का फैलाव बहुत है। प्रायः सब प्रांतों में इसकी खेती होती है। मध्यप्रदेश का रोज़ियम जिसकी खेती मध्यभारत, खानदेश और बंबई प्रांत में भी होती है इसी वर्ग का है। इसमें रुई के रेशे की लंबाई आधे इंच से कुछ अधिक होती है और कपास से करीब ४० शतांश रुई मिल जाती है। मध्यप्रदेश का वेरम (Verum) मध्यभारत का मालवी, पंजाब का मॉलीसनी, दक्षिण भारत का करुंगनी और बरार का बनी भी आरबोरियम जाति के हैं।

व्यावसायिक वर्गानुसार कपास की जातियां[1]

निम्नलिखित नामों से ज्ञात होता है कि जिन-जिन बंदरगाहों से या जिन-जिन प्रांतों के बंदरगाहों से कपास का निर्यात होता रहा उन्हींके आधार पर ये नाम हैं। यद्यपि कुछ बंदरगाह जैसे ढोलेरा, उमरा इत्यादि अब नहीं हैं फिर भी ये नाम कपास के अब भी चल रहे हैं।

---

[1] Technologial Reports on Standard Indian Cottons 1944 p. 2. Technological. Bul. Sec. A. No. 62 of the Indian Central Cotton Committee.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कोष्टक में जो अंक दिये गये हैं ये १९४२–४३ की उपज के हैं और चार सौ पौंड (४·८५ मन) की रुई की गठानों के हैं। इनपर तीन शून्य और लगाकर पढ़िये।

बंगाल्स—संयुक्त प्रांतीय (१०३), राजपूताना (७०), सिंध देशी (४३), पंजाब देशी (२०६), मॉली सोनी (१६५) कुल (५८७)

भड़ोंच—भड़ोंच (१८३), पंजाब अमेरिकन ४ एफ (५३९), सिंध अमेरिकन ४ एफ (६), सिंध अमेरिकन २८९ एफ जिसमें एन० टी० ९८ और सिंध सुधार मिले हुए हैं (४०७), पंजाब अमेरिकन २८९ एफ जिसमें एल० एस० एस०,/के २५ और २८९/एफ ४३ मिले हुए हैं (४५२), सूरत, सूरत नं १०२७ और नवसारी (११७), ढोलेरा, बागड़, लालियो और कालाजिन (२२८) कुल (१९३२)

उमड़ा—वराड़ी (२७), वेरम और जड़ीला (३४८), बुरी (८४), सी० पी० नं० १ और २ (८०), मध्य भारतीय (१२०), मालवी (१०९), खानदेशी (२०६), माठियो (४१), हैदराबाद गौरानी (१४६), वारसी नागर (२७८), कुल (१९३९)।

सदर्नर्स—हुगारी नं० १ (१०७), नदंयाल (१७), कोकोनेडा और वारंगल (३०), कूम्पटा, जयवंत, अपलैंड, गड़ग नं० १, (१४७), कंबोडिया (२५०), टिनीवेली (९२), करुंगनी (५०), सलीम (८), कुल (७०१)।

अन्य—कोमिला (४२), चीना पट्टी (१) कुल (४३) समस्त (४७०२)।

जलवायु—कपास की बाढ़ के समय में ऊष्ण और तर वातावरण चाहिए और फल बैठने के बाद ठंडा और उनके तड़कने (फटने) के लिए कुछ सूखा वातावरण अच्छा होता है। फूल खिलने लगे उस समय यदि जोरों की वर्षा हो जाय तो पराग-कण भीग जाते हैं और गर्भाधान ठीक से नहीं होता। कलियां भी गिरने लग जाती हैं। इसी तरह जब फल बैठने लगे उस समय बादल छाये रह जायं और वातावरण गरम हो जाय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो फल गिरने लग जाते हैं। कपास को पाले से भी बहुत हानि होती है। यही कारण है कि पंजाब में जहां सर्दी अधिक पड़ती है कपास वैशाख (अप्रैल) में ही सिंचाई से बो देते हैं ताकि माघ की सर्दी के पहले कपास चुन लिया जाय। विशेषतः अमेरिकन जातिवाले कपास को जल्दी ही बोना पड़ता है। पाले से प्रतिवर्ष कपास को अधिक हानि वहां होती है जहां वर्षारंभ के समय बोया जाता है और माघ में सर्दी यकायक जोर कर देती है।

वर्षा के विचार से देखा जाय तो २५ इंच से ४० इंच वर्षावाले स्थान कपास की खेती के लिए उत्तम होते हैं। अधिक वर्षा होने से पौधों में पानी लग जाता है और उनकी बाढ़ ठीक नहीं होती। अगर मिट्टी हलकी हुई जिसमें निकास और नितार अच्छा हो तो उस स्थिति में पचास इंच वर्षावाले स्थानों में भी कपास अच्छा हो जाता है। वर्षा का वितरण भी सम होना चाहिए। एक साथ अधिक हो जाना अच्छा नहीं होता। बोने के बाद थोड़ी वर्षा होती रहे और कुछ धूप निकलती रहे तो बाढ़ अच्छी होती है। यदि कपास के फूलने और उसकी चुनाई के समय वर्षा आजाय तो वह अच्छी नहीं होती।

तापमान देखा जाय तो २१° सें० से ३२° सें० तक का तापमान अच्छा होता है। जहां कपास की बाढ़ के समय ऐसा तापमान रहता है वहां बाढ़ और उपज दोनों अच्छी होती हैं। कपास की बाढ़ का समय बोने के पंद्रह दिन बाद से फूल खिलने तक का अर्थात् लगभग दो-तीन महीने का है।

जमीन और जुताई—भारतवर्ष में कपास के लिए काली मिट्टी अच्छी सिद्ध हुई है। ऐसी मिट्टी मध्यप्रदेश, मध्यभारत, गुजरात, हैदराबाद और मद्रास के कुछ हिस्सों में पाई जाती है। इससे उतरती हुई भूरी कछार मिट्टी (Alluvial) मिट्टी है जो उत्तर भारत, पंजाब, संयुक्त प्रांत, बिहार और बंगाल तक फैली हुई है। तीसरी श्रेणी की लाल मिट्टी है जो मद्रास, पूर्वीय हैदराबाद तथा उड़ीसा में है। अम्लवाली मिट्टी में कपास अच्छा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं हो सकता। सात पी० एच० वाली मिट्टी उत्तम होती है।

जुताई— कपास की खेती काली मिट्टी में होती है जिसकी जुताई बड़ी सावधानी से करनी पड़ती है। यदि कुछ गीली मिट्टी में हल चला दिया जाय तो उसके चिकनी होने के कारण मिट्टी के कण ऐसे जुड़ जाते हैं कि उनपर हवा का पूरा असर नहीं होता और यदि कुछ अधिक सूखने पर हल चलाया जाय तो इतने बड़े-बड़े ढेले पड़ जाते हैं कि उन्हें बाद में तोड़ना कठिन हो जाता है। ऐसी मिट्टी की जुताई की उत्तम रीति तो यह होगी कि पिछली फसल उठाने के साथ ही खेतों में हल चला दिये जायं और उसकी खूंटियां चुन ली जायं। गरमी में ऐसी मिट्टी आप-ही-आप फट जाती है। इसलिए उसे वैसे ही छोड़ देना चाहिए। वर्षा आने के कुछ दिन पहले गोबर [1] का खाद देना हो तो उसे छींटकर बखर से मिला दिया जाय। पहली वर्षा होते ही ज्योंही जमीन हल चलाने योग्य हो जाय एक बार हल चलाकर बखर चला देना काफी होगा। भूरी कछार मिट्टी या अन्य प्रकार की मिट्टी में गर्मी में कम-से-कम दो-तीन बार हल और दो बार बखर चलाना उत्तम होगा।

खाद और हेरफेर—

कपास की फसल में खाद्य पदार्थ[2]

	जड़	धड़	पत्ते	फल	बीज	रुई
ना०	·४८	·६४	२·२५	१·८३	३·५४[3]	०·१८

---

[1] कपास के लिए जहां तक हो गोबर का खाद इससे पहिलेवाली फसल को अधिक दे देना उचित होगा।

[2] Brown H. B. 1933 Cotton. p. 220 (Originally compiled by Anderson Ross.)

[3] भारत के भिन्न-भिन्न भागों में होनेवाले कपास के बीजों में जाति अनुसार ना० की जो मात्रा पूसा बुलेटिन नं० ७० में दी गई है वह २·५ शतांश से लेकर ३·८ शतांश तक है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

	जड़	धड़	पत्ते	फल	बीज	रुई
फा० पे०	·२६	·२१	·४८	·७८	१·४०	०·०९
पो० श्रा०	·९०	·८५	१·०९	१·६०	१·१३	०·५९
चूना Ca. O.	·४५	·७८	५·२८	०·५१	०·३२	०·०७

कपास की फसल द्वारा रुई, बीज श्रौर डंडिया (धड़) खेतों से हटाई जाती हैं। कहीं-कहीं जहां डंडियां उखाड़ी जाती हैं वहां जड़ें भी हटा ली जाती हैं। कपास की श्रंतिम चुनाई तक पत्ते तो करीव-करीव सब खेतों में गिरकर मिट्टी में मिल जाते हैं। जो श्रंग हटाये जाते हैं उनमें से रुई में खाद्य पदार्थ की मात्रा वहुत कम रहती है श्रौर चूंकि रुई की उपज भी भारत में प्रति एकड़ सवा मन से लेकर दो-सवा दो मन तक ही होती है, इसलिए इसके द्वारा हटाये गये तत्त्वों की गणना न भी की जाय तो विशेष घाटा नहीं होगा। यहां पर जड़, धड़, फलों के छिलके श्रौर बीज द्वारा हटाये गये तत्त्वों की गणना करते हैं।

उपर्युक्त भागों की निष्पत्ति[1]

मेकब्राइड महोदय के श्रन्वेषणानुसार कपास की फसल में जड़ ८·८०%, धड़ २३·१५%, पत्ते २०·२५%, फलों के छिलके (Burs) १४·२१%, बीज २३·०३% श्रौर रुई १०·५६% पाई जाती है।

चूंकि हमें जड़, धड़, बीज, श्रौर फलों के छिलकों का ही विचार करना है। हम इन्हींकी निष्पत्ति का विचार कर खाद की मात्रा गिना लेते हैं। सन् १९३५-३६ से १९३९-४० की उपज के हिसाव से गणना की जाय तो समस्त भारत की श्रौसत उपज १·१ मन प्रति एकड़ पड़ती है। पंजाब की उपज जहां श्रधिकांश कपास सिंचाई से उपजाया जाता है वहां की रुई की उपज २·०६ मन यानी लगभग २ मन हुई। साधारणतः रुई की उपज से बीज की उपज दुगुनी होती है। इस हिसाव से पंजाब में बीज

[1] McBryde Quoted by Brown. Cotton p. 216.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की उपज चार मन हुई। उसी उपज पर यदि खाद की गणना की जाय तो निम्नलिखित मात्रा आयेगी।

	ना०	ना० प्रति एकड़
बीज की उपज ४ मन	...३.५४%	५.६६ सेर
डंठल की उपज ४ मन फलों के छिलकों[1] की उपज लगभग २.५ मन	०.६४%	१.६६ ,,
जड़ें लगभग १.५ मन	...०.४८%	.२८ ,,
		७.६० सेर

कुल ना० लगभग ८ सेर हुई। इससे दुगुनी मात्रा पहुंचाने के लिए हमें ८० मन गोवर का खाद पहुंचाना चाहिए। कृत्रिम खाद में एमोनियम सलफेट देना हो तो एक मन और यदि खली का खाद देना हो तो चार मन प्रति एकड़ देना चाहिए।

यहां पर पाठकों को यह बतला देना उचित होगा कि कपास की फसल के लिए गोबर का खाद उससे पहलेवाली फसल को देना उत्तम होगा। रावर्ट महोदय[1] लिखते हैं कि जहां बिना खाद की उपज पांच से सात मन होगी तो उससे पहले मक्का या गन्ने की फसल को अच्छा खाद दिया हुआ होगा तो उपज दुगुनी तक हो सकती है, लेकिन कपास को ही खाद दिया जाय तो इतनी उपज नहीं आयेगी। यदि कपास को ही खाद देना हो तो बोने से डेढ़-दो महीने पहले देना अच्छा होगा।

कृत्रिम खाद जो कपास को दिये जायं तो उन्हें बीज की कतारों से दो-तीन इंच की दूरी पर और वोने की गहराई से कुछ गहरा देना चाहिए। ऐसी क्रिया जहां मशीन से बोते हैं वहां सरल है, क्योंकि मशीन की एक

---

[1] उपर्युक्त सारिणी में फलों के ना० की मात्रा दी है। छिलकों की नहीं है। छिलकों में डंठल से कुछ ही अधिक मात्रा होती है। इसलिए डंठल के बराबर मानकर ही गणना करली गई है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नली द्वारा वीज गिराये जा सकते हैं और दूसरी द्वारा खाद।

खली का चूरा वीज के साथ मिलाकर भी दे सकते हैं। कृत्रिम खादों में फो० का खाद भी अवश्य देना चाहिए इससे पौधे स्वस्थ होंगे —अधिकांश फल एक साथ पककर फटेंगे जिससे चुनाई में सुविधा होगी और वीज में तेल भी विशेष होगा। लगभग वीस सेर फा० पे० पहुंचे इतना खाद देना चाहिए।

उपर्युक्त गणना सूत्रात्मक रीति से मिली। अब कुछ क्रियात्मक प्रयोगों पर भी विचार करलें।

नजीर अहमद और सेन महोदय ने सन् १९३४ की साइंस कांग्रेस में वतलाया था कि अच्छी उपजाऊ जमीन में कपास को कृत्रिम खाद से विशेष लाभ नहीं होता। कमजोर भूमि में ऐसे खाद से उपज ही नहीं वल्कि रेशा भी मजवूत होता है।

इतना और भी ध्यान रहे कि खाद से रूई की अपेक्षा बीज की उपज अधिक वढ़ती है।

एलन[२] महोदय लिखते हैं कि कपास के लिए कृषक लोग जो १६ गाड़ी यानी लगभग १५० मन गोवर का खाद डालते हैं उससे कपास के वाद वाली फसल को भी लाभ पहुंचता है परंतु कपास के लिए इतने खाद की आवश्यकता नहीं। इसके लिए तो साठ-सत्तर मन गोबर का खाद देना चाहिए। वाद में अगस्त के महीने में वरसात में ५ सेर ना० पहुंचे इतना सोडियम नाइट्रेड दे देना चाहिए।

वैधनाथन[३] महोदय ने कई प्रयोगों के फल अपनी रिपोर्ट में दिये हैं जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

---

[१] Robberts W. V. and Faulkner O. T. 1921, A Text Book of Punjab Agriculture P. 121.

[२] Allan R. G. C. P. Dept. Agri. Bul. 1V P. 6.

[३] Annalysis of manurial experiments in India Vol. II.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नागपुर में ८ सेर ना० एमोनियम सलफेट के रूप में देकर देखा गया तो कपास की उपज ८.६ मन आई, जबकि बिना खाद की उपज ६.८ मन हुई। जब खाद की मात्रा दुगुनी यानी १६ सेर ना० तक बढ़ा दी गई तो उससे कपास की उपज ८.७ मन हुई अर्थात् ०.१ मन ही बढ़ी। इससे ज्ञात होगा कि कपास के लिए ८ सेर से अधिक ना० का डालना आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं होगा।

अकोला—१२ साल की औसत उपज देखी गई तो जहां बिना खाद के ८.४ मन उपज कपास की आई वहां १५ सेर ना० एमोनियम सलफेट के रूप में दी गई तो उपज ११ मन आई और जब आधा खाद बोते समय और आधा बाद में दिया गया तो उपज ११.४ तक बढ़ी। खली के खादों में ३ मन एरंडी की खली (८ सेर ना०) और सुपरफास-फेट १ मन (७.५ सेर फा० पे०) अकोला फार्म पर डाल कर देखा गया था तो कपास की चार साल की औसत उपज लगभग १० मन आई जब कि बिना खाद के लगभग ८ मन ही आई। जब बिना सुपर फासफेट के खली ही डाली तो उपज ९.८ मन पड़ी।

बरार के कुछ फार्मों पर मूंगफली की खली (१० सेर ना०) का असर देखा गया तो वह भी ऐसा ही पाया गया। इसके साथ एमोनियम सलफेट का असर भी देखा तो कहीं तो मूंगफली की खली के बराबर रहा और कहीं कम ही रहा। एक-दूसरे प्रयोग में ६, ८, १० और १२ मन खली डालकर रोजियम जाति के कपास पर जांच की तो बिना खाद से लगभग ७.४ मन उपज बैठी। ६, ८, १० और १२ मन खली से लगभग ८.४, ८.५, ८.३ और ९.३ मन उपज पड़ी। इन अंकों से साफ ज्ञात होता है कि ६ मन खली से अधिक देना तो लाभप्रद हो ही नहीं सकता इससे कम कितनी दी जानी चाहिए यह देखना था।

बंबई प्रांत के सूरत फार्म पर एक प्रयोग किया था जिसमें ५.०, ७.५, १०, १२.५, १५, १७.५ २०, २२.५, और २५ टन प्रति एकड़ गोबर का खाद देकर देखा गया तो कपास की उपज जहां बिना खाद के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४.७ मन पड़ी वहां उपर्युक्त खाद की मात्राओं से उपज ५.४, ५.४, ४.५, ४.९, ४.१, ४.४, ४.६, ५.७, ५.७ मन पड़ी। ये अंक हैं तो सिर्फ दो साल के परंतु बड़े उपयोगी हैं। इनसे भली-भांति ज्ञात होता है कि पांच टन से अधिक खाद देने की आवश्यकता नहीं। पांच टन से कम खाद देने से क्या असर होता यह नहीं कह सकते। अनुमान किया जा सकता है संभवतः ढाई या तीन टन यानी सत्तर-अस्सी मन खाद जो सूत्रात्मक गणना से आता है काफी होता।

सूरत के एक प्रयोग में दस सेर ना० खली के रूप में देकर देखा गया तो कोई लाभ न हुआ।

मद्रास में कोयलपट्टी के तीन साल के प्रयोग से यह ज्ञात हुआ कि लगभग १२ मन नीम की खली (ना० २७ सेर) डालने से कपास की उपज ४ मन बढ़ी, लेकिन यह मात्रा बहुत अधिक जचती है। बेलारी में १२ मन कुसूम की खली (ना० २० सेर) देकर देखा गया तो बिना खाद से जो उपज आई उसके बराबर या कम ही आई।

उपर्युक्त कथनों से ज्ञात होगा कि कपास के लिए सूत्रात्मक रीति से गणना की हुई जो मात्रा दी है वह काफी है। अधिक देने से आर्थिक दृष्टि से लाभ नहीं होगा।

हेरफेर और मिश्रण—जहां बिना सिंचाई के कपास लेना हो वहां एक साल कपास तो दूसरे साल भारी जमीन में ज्वार और हलकी में बाजरा ले सकते हैं। यद्यपि दलहन की फसलों में विशेषतः मूंगफली के साथ हेरफेर करना उत्तम होता है, परंतु पशुओं के लिए चारा चाहिए इसलिए ज्वार-बाजरे को स्थान देना ही होगा। फिर भी तीन-चार साल में एक बार मूंगफली की फसल को कपास-ज्वार के हेरफेर में स्थान दे देना बहुत अच्छा होगा। सिंचाई वाले खेतों में एक साल मक्का या गेहूं और दूसरे साल कपास दे सकते हैं। जहां वर्षा कुछ अधिक होती है और रबी की फसल ली जा सकती है वहां रबी की मौसम में एक साल गेहूं, चना या मटर जैसी फसल लेनी चाहिए। कहीं-कहीं जहां चावल की खेती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी हो सकती है वहां मोटे चावलों के धान की फसल के साथ भी हेर-फेर किया जा सकता है जैसा कि बंबई प्रांत में कहीं-कहीं होता है। पंजाब की तरफ तोरिया के साथ हेरफेर करना उत्तम पाया गया है। वैसे ऊख, चना या मक्का के साथ भी हेरफेर किया जाता है। कहीं-कहीं कपास की कतारों के बीच में कुछ कतारें तूअर, भिंडी, एरंडी, तिल, शफतालू, सेंजी इत्यादि की भी लगा देते हैं जिनसे आवश्यकतानुसार सब्जी, अन्य पदार्थ या चारा मिल जाते हैं। कहीं-कहीं ककड़ी, कचरी, फूट इत्यादि भी कपास के साथ-साथ बो दिये जाते हैं। मद्रास की ओर कपास के साथ कुलथी, धनिया और कंगनी भी बोते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि न्यूनाधिक वर्षा के कारण कपास की फसल बिगड़ जाती है और पौधों का फैलाव कम होता है तो चने की कतारें कपास की कतारों के बीच में बो दी जाती हैं।

एलन महोदय लिखते हैं कि कपास के साथ सन का हेरफेर किया जाय तो भी अच्छा होगा। सन से ताग मिल जायगा और बीज भी मिलेंगे। बाद में कपास लेने से खेत अच्छे साफ मिलेंगे और उपज भी अधिक होगी। यह क्रिया दिखती तो अच्छी है, परंतु एक साल में सिर्फ सन की फसल ही मिलेगी और दूसरे साल कपास होगा।

मिस्र में जहां कपास अच्छा होता है वहां बरसीम के बाद कपास और कपास के बाद जल्दी आनेवाली ज्वार या मक्का लेकर फिर बरसीम होते हैं। ऐसा हेरफेर भी उत्तम जचता है।

बीज और बोआई—जब कपास ओटने के चरखे[1] ग्रामों में चलते थे तब कृषक अपना-अपना कपास ओटवाकर बीज रखते थे। ऐसी स्थिति में उन्हें शुद्ध बीज आसानी से मिल जाता था। वर्तमान समय में यद्यपि अलग-अलग जाति के कपास की ओटाई अलग-अलग की जाती है जिससे रुई तो अलग-अलग रह जाती है परंतु बीज में तो कुछ मिश्रण

---

[1] कपास ओटने का पहला चर्खा भारत में ही बनाया गया था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो ही जाता है। चूंकि कृषकों का उद्देश्य तो अधिक उपज से रहता है वे थोड़े बहुत मिश्रण का विचार करते भी नहीं।

कपास में मिश्रण कितना हो जाता है वह निम्नलिखित अंकों से ज्ञात होगा।

हचिनसन[1] महोदय ने मालवे के अच्छे कपास उपजाने वाले गांवों के कपास की जांच की तो उन्हें २७·३% पौधे वेरम जाति के, ६२·८% मालवेन्सी, ८·४% रोजियम और १·५% कच्चीकम जाति के मिले। निमाड़ के कपास में क्रमानुसार उपर्युक्त अंक ३·४%, १०.३%, ८४·६% और १·७% मिले। उसी भांति राजपूताने के खेतड़ी ठिकाने में मॉलीसनी के अंक ५·३%, ९·१%, ४१·७% और ४३·९% मिले।

वर्तमान समय में अधिकांश कृषक कपास के बीज जीनघरों (Ginning factories) से लाते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि कपास या दूसरा माल शहरों में ले जाते हैं और उधर से कपासिये (बिनौले) भरकर ले आते हैं। ऐसे बीज में से कुछ तो बीज के लिए रख लेते हैं और कुछ दुधारू पशुओं को खिला देते हैं। कुछ कृषक मालगुजार या साहूकारों से बीज लेते हैं और बीज के बदले एक निर्माणित मात्रा में फसल तैयार होने पर कपास दे देते हैं। अब भी कुछ कृषक ऐसे हैं जो बीज के लिए देशी चरखों से घर पर ही कपास ओटवाते हैं।

[1] Hutchinson J. B. & Ghose R. L. M. The composition of the cotton crops of C. I. & Rajputana. Indian J. Agri Sci, Vol. VII 1937 p I–34.

वेरम, मालवेन्सरी, रोजियम और कच्चीकम ये आरबोरियम वर्ग के कपास हैं। इनमें रोजियम और कच्चीकम के फूल सफेद और दूसरे के पीले होते हैं। पत्तों के हिसाब से देखा जाय तो मालवे की और कच्चीकम के पत्ते बड़े और दूसरों के छोटे अधिक कटे हुए होते हैं। कच्चीकम से ३७% वेरम से ३३% मालवेन्सी से ३०% और रोजियम से ४०% रुई निकलती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपास का वीज सरकारी वीज गोदामों से भी प्राप्त किया जा सकता है जो उनके विभाग द्वारा तैयार किया हुआ होता है। कॉटन कमेटी[1] भी उत्तम वीज वितरण के लिए प्रान्तों को काफी मदद देती है। कृषि विभाग वाले जो जातियां निकालते हैं कुछ दिन पहले तक उनका ध्येय यही था कि कपास की उपज अधिक हो और पौधे व्याधि रहित जाति के हों ताकि कृषक अच्छा लाभ उठा सकें। वर्तमान समय में दो-एक बातें और भी आ गई हैं। वह यह हैं कि कपास से पहले की अपेक्षा रुई अधिक निकले और वह रुई मुलायम और लंबे रेशे की हो ताकि बढ़िया महीन कपड़ा बनाया जा सके।

चूंकि सब गुण एक ही जाति में लाना और फिर प्रत्येक स्थान की जलवायु में उससे उतनी ही उपज प्राप्त करना बहुत कठिन है। इसलिए प्रांतीय कृषि विभाग वाले अपने प्रांतों के लिए कपास चुनकर के या संकर क्रिया द्वारा निकाल रहे हैं।

हमारे यहां देशी और विदेशी दो प्रकार के कपास होते हैं। विदेशी में मिस्र और अमेरिका के आये हुए कपासों की गणना हैं। अमेरिकन जातियों का प्रचार बहुत वर्षों से हो रहा है, परंतु अभी तक संतोषजनक विस्तार नहीं हुआ। जिसका मुख्य कारण यह है कि ये यहां की जलवायु को ठीक से अपना न सके। साधारण मौसम में तो वे अच्छी उपज दे जाते हैं परंतु जहां न्यूनाधिक वृष्टि या गर्मी हुई वे देशी से दब जाते हैं। अमेरिका में कपासवाले अधिकांश भागों में पानी थोड़ा-थोड़ा अधिक समय तक बरसता है। हमारे यहां तो ठीक से देखा जाय तो जिन भागों में कपास अधिक होता है दो-ढाई महीनों (मध्य जून से मध्य अगस्त) में ही ८० शतांश से अधिक वर्षा हो जाती है। ऐसी स्थिति में अमेरिकन जातियां

---

[1] कपास के सुधार के विषय में क्या-क्या काम होता है इसके लिए कॉटन कमेटी की वार्षिक रिपोर्ट देखना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपजाई जायं तो उन्हें सींचना ही होगा और बोना भी जल्दी होगा। फिर भी चुनाव तथा संकर क्रिया द्वारा कुछ जातियां निकली ही हैं।

मिस्र की जलवायु सिंध की जलवायु से मिलती है, इससिए सिंध में मिस्र का कपास कुछ हद तक अच्छा होता है। मिस्र का कपास संसार भर के कपासों से अच्छा होता है। इसका रेशा लंबा और रेशम जैसा मुलायम होता है। अमेरिकन कपास मिस्री कपास से हलके लेकिन देशी से कुछ अच्छे होते हैं। रुई इन सब कपासों से तीस-पैंतीस शतांश तक ही निकलती है। जहां देशी रोजियम से चालीस शतांश तक भी प्राप्त हो जाती है।

भिन्न-भिन्न प्रांतों के कृषि-विभाग द्वारा प्रचार किये जाने वाले कुछ कपास[1] निम्नलिखित हैं।

उत्तर प्रदेश—३५-१ (३७) पंजाव अमेरिकन २१६ एफ (३३)

बंबई—कल्याण (४०) विजय (४०) सुयोग (३४) १०२७ ए० एल० एफ० (३६) जरीला (३५) वर्नाट (३८) जयधर (३०) लक्ष्मी (३६)

पंजाब—पंजाव अमेरिकन एल० एस० एस० (३३) एम० ६० (३८) पंजाव अमेरिकन २१६ एफ० (३३) प० अ० ३२० एफ (३४) एम० ३६ (३६) २३१ आर० (४२)

पेप्सू— प० अ० २१६ एफ० (३१) प० अ० ३६० एफ० (३३) प० अ० एल० एस० एस० (३५)

मद्रास—कंबोडिया २ (३१) म० क० युगंडा (३१) करुंगनी २ (३०) करुंगनी ५ (३०) एच० ४२० (३४) एन १४ (२४) कोकानेडा २ (३०)

मध्य भारत—जड़ीला (३५) सी० इंदौर २ (३३) वर्नाट १६७-३ (३६)

---

[1] ये काटन कमिटी के सेक्रेटरी श्री पी० डी० नायर की कृपा से प्राप्त हुए हैं। कोष्टक के अंक कपास में रूई के हैं। रूई शतांश में है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मध्य प्रदेश—नं० ६१ (३६) बुरी ०३६४ (३२) एम० ए० ५ (३६)
मैसूर—एम० ए० ५ (३५)
राजस्थान—सी० इंदौर १ (२६) सी ५२० (३८) जी १ (३८) प० अ० २१६ एफ० (२६)
हैदराबाद—परभावी अ० १ (२६) गौरानी ६ (३०) गौरानी १२ (३२)

बीज की मात्रा—कपास के बीज की मात्रा में प्रांतीय अंतर विशेष नहीं है।

बंबई प्रांत	५ सेर प्रति एकड़।
मध्य प्रदेश	६ से ८ सेर प्रति एकड़।
संयुक्त प्रांत	४ से ६ सेर एकड़।
पंजाब	४ से ५ सेर प्रति एकड़।

इतना ध्यान रहे कि जो कपास देरी से बोया जाय उसमें बीज की मात्रा अधिक डालनी होगी, कारण कि पौधों कि बाढ़ कम होगी और बहुत-सी जगह खाली रह जायगी।

बोने का समय—अधिकांश भागों में कपास एक अच्छी वर्षा के बाद ही बोया जाता है, परंतु ऐसा देखा गया है कि जो कपास वर्षा के पहले बो दिया जाता है उसकी उपज अच्छी होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि पहले बो देने से पहली वर्षा गिरते ही कपास के पौधे निकल आयेंगे और जबतक कि वर्षा की झड़ियां शुरू होंगी वे काफी बड़े हो जायेंगे। जो कपास देरी से बोया जाता है उसके पौधे जब लगातार वर्षा शुरू होती है उस वक्त तक छोटे-छोटे रह जाते हैं और पानी लगने के कारण वे बढ़ने नहीं पाते। वर्षा के आने की संभावना के आठ-दस दिन पहले बो देना चाहिए। इसमें यह भय अवश्य है कि यदि पहला पानी गिर कर बाद में लंबी खींच कर जाय तो अंकुरित बीज के अंकुर या छोटे-छोटे पौधे सूख जाते हैं। इसके लिए यदि ऐसा हो जाय तो फिर से बो देना चाहिए। थोड़ा बीज ही तो बिगड़ेगा। जल्दी बोने में एक लाभ यह भी होता है कि माघ (जनवरी) की सर्दी और पाले से जो हानि कभी-कभी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपास को हो जाती है वह नहीं होगी। जल्दी बोया जाय तो वह जल्दी पक जाता है और बहुत सा भाग पहले ही चुन लिया जाता है। जहां सिंचाई का प्रबंध हो वहां तो ज्येष्ठ (मई) में ही बोना उत्तम होगा। पंजाब में ज्येष्ठ तो क्या वैशाख (अप्रैल) में भी बो दिया करते थे; परंतु अब मई के अंत तक ही बोते हैं। उत्तरप्रदेश में कहीं-कहीं वर्षा से पहले और अधिकांश भागों में वर्षारंभ के साथ ही बोते हैं। बिहार, मध्यप्रदेश, मध्य भारत और उत्तर गुजरात में वर्षारंभ के साथ ही बोने की प्रथा है। दक्षिण गुजरात में आषाढ़ से आश्विन (जून से सितंबर) और मद्रास में भाद्रपद से आश्विन (अगस्त से सितंबर) तक बोने का कार्य चलता रहता है।

जिस जमीन में खार (Alkali) आ जाता हो उसमें एक-दो अच्छी वर्षा के बाद बोना चाहिए ताकि गर्मी में जो खार ऊपर आ जाता है वह पानी के साथ बह जाय या भूमि में नीचे चला जाय। उगते हुए बीजों को अधिक खार वाली भूमि हानिकारक होती है।

बोने की रीति—कपास के बीज बिनौले या कपासिये कहलाते हैं। इनके ऊपर छोटे रोएं रहते हैं। ये रोएं वे होते हैं जो बीज पर रेशा बनने के लिए निकलते हैं, परंतु कुछ तो बढ़ जाते हैं, जिन्हें रुई के रूप में निकाल लेते हैं और कुछ छोटे-छोटे रह जाते हैं। इन्हीं रोओं के कारण बीज एक दूसरे से चिपक जाते हैं और बोने में दिक्कत होती है। इसके लिए अमेरिका में तो मशीन द्वारा इन रोओं को छुड़ाया जाता है, परंतु उससे कुछ बीज खराब होते हैं। भारत में तो सरल युक्ति यह की जाती हैं कि बीज पर गोबर और चिकनी मिट्टी डालकर उन्हें हाथों से मलते हैं। मिट्टी और गोबर रोओं को बीज से चिपका देते हैं और थोड़ी देर सूखने से प्रत्येक बीज अलग-अलग हो जाता है। कहीं-कहीं ऐसा भी करते हैं कि सुतली की खाट पर डालकर मिट्टी मिले हुए बीज नीचे गिराते हैं। बीज निकलने जैसे छेद वाली चलनी भी इस कार्य के लिए बनाई जा सकती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपास के बीज कहीं-कहीं विशेषत: पंजाब में छींटकर ही बोते हैं परंतु अधिकांश भागों में कतारों में ही बोये जाते हैं। कहीं-कहीं हल चला कर चांस में बीज गिरा देते हैं और बाद में पठार चलाकर ढक देते हैं। बहुधा बोने के देशी यंत्र अरगढ़ा या नाई भी काम में लाते हैं । कपास की जाति अनुसार कतारों में अंतर रखा जाता है। जो कपास अधिक फैलते हैं उनकी कतारों में विशेष अंतर रखना चाहिए। कमजोर भूमि में जहां पौधों में बाढ़ की कम संभावना है वहां कतारें कुछ नजदीक ही रखनी चाहिए। इसी तरह जहां बोने में देरी हो जाय तो उसमें भी कतारों में अंतर कम रखना होगा।

मध्य प्रदेश और बरार, हैदराबाद और मद्रास के कुछ भागों में कतारों में १८ इंच की दूरी काफी मानी जाती है। सिंचाई से जहां उपजाया जाय जैसा पंजाब में तो वहां दो-ढाई फुट या कहीं-कहीं तीन फुट का अंतर भी रखते हैं। दक्षिण गुजरात में पांच फुट तक का अंतर भी रख देते हैं; परंतु ऐसे खेतों में कपास की कतारों के बीच में मूंग या मूंगफली-जैसी फसल लगा देते हैं।

निंदाई, निराई या सोहनी—कपास के खेतों में से घासपात निकालने के लिए कम-से-कम दो बार निंदाई अवश्य करनी होगी। निंदाई के साथ साथ पौधों की छंटनी करके जाति अनुसार उनमें अंतर करना होगा। साधारणत: छः इंच से एक फुट का अंतर उत्तम होगा। वैसे बहुत फैलाने वाली जाति में सवा फुट तक भी बढ़ाया जा सकता है। निंदाई के बाद जब पौधे कुछ बड़े हो जाते हैं तो उनमें कड़पा (डोरा Hoe) चलाना होता है। एक जोड़ी बैल से दो कड़पे आसानी से चला सकते हैं। इनसे कपास के पौधों की कतारों के बीच का घासपात भी निकल जायगा और जमीन की पपड़ी भी टूट जायगी जिससे पानी का भी बचाव होगा। जब फूलों की कलियां आ जायं तो फिर कड़पे नहीं चलाना चाहिए। निंदाई के समय जब दूसरी जाति के कपास के पौधे जो पत्तों की बनावट से पहिचाने जा सकते हैं। नज़र आ जायं तो उन्हें उखाड़ देना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समान पत्ते वाली जातियां फूल खिलने पर आसानी से पहिचानी जा सकती हैं सो दूसरी जाति के पौधे उस समय उखाड़ डालना चाहिए। उसी भांति धड़-छेदक कीट द्वारा जो पौधे मर जायं उन्हें उखाड़ कर जड़ और ऊपरी भाग के मेल के निकट चीर कर देखना चाहिए। यदि उनमें कीट नजर आयें तो उन्हें नष्ट कर देना चाहिए ताकि आगे अन्य पौधों को हानि नहीं पहुंचावें।

किंग और लुई[1] महोदय ने पहले-पहल आई हुई तीन हफ्ते तक की फूलों की कलियां प्रत्येक कतार के हर दूसरे पौधे की तोड़ दी और बाद में उपज देखी तो मालूम हुआ कि जिन पौधों की कलियां तोड़ दी थीं उनसे लगभग २५ शतांश उपज अधिक प्राप्त हुई। इससे ज्ञात होता है कि देखभाल के समय पहली कलियां कुछ तोड़ दी जायं तो उपज अधिक हो सकती है। इस क्रिया को अपनाने में दो आपत्तियां हैं। एक तो यह है कि हमारे यहां इसका प्रयोग करके देखना है। दूसरा यह कि कलियां तुड़वाने में व्यय कितना होगा।

कपास अधिकतर बरानी खेतों में उपजाया जाता है, परंतु जहां वर्षा कम होती है अथवा जहां बरसात के पहले कपास बोया जाता है वहां सिंचाई अवश्य करनी होती है। इसके सिवाय कुछ जातियां ऐसी भी हैं जो सिंचाई से अच्छी उपज देती हैं जैसे गुजरात का ललियो या पंजाब का पंजाब-अमेरिकन या सिंध का मिस्री कपास।

कपास में आवश्यकतानुसार पानी न मिले और भूमि सूख जाय तो पौधे छोटे रह जाते हैं। यदि जमीन आवश्यकता से अधिक गीली हो जाय तो पत्तों की बाढ़ अधिक हो जाती है और फल अधिक आते हैं। यदि पानी इतना अधिक हो जाय (जैसा कि अधिक वर्षा से हो जाता है) कि जड़ों को हवा भी न लगे तो पौधे पीले पड़ कर मर भी जाते हैं।

---

[1] U. S. Dept. Agri. cir. No. 205 1932.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपास में एक अच्छा गुण यह है कि इसकी महीन-महीन जड़ें जमीन से काफी गहरी चली जाती हैं। मिस्र में किंग महोदय ने जांच की थी तो पता लगा कि दस फुट आठ इंच तक जड़ें पहुंच गईं थीं। यही कारण है कि कपास के लिए पानी का कुछ दिन खिंचाव हो जाय तो पौधे छोटे भले ही हो जायं परंतु मरते नहीं।

फल बैठने लगे उस समय भी अधिक पानी नहीं देना चाहिए वरना फल गिरने लग जाते हैं।

साधारणतः कपास में स्थानीय आवश्यकतानुसार तीन से आठ सिंचाई करनी पड़ती है। प्रत्येक सिंचाई में ढाई से तीन इंच पानी देना चाहिए।

कीट और व्याधियां—कपास के पौधे जब छोटे होते हैं तो भूरे रंग के टिड्डे उनके पत्ते खा जाते हैं लेकिन ऐसी हानि नहीं होती कि जिसके लिए विशेष उपचार किया जाय। पौधे स्वस्थ हों और खेत में घासपात न रहे तो इनसे हानि बहुत ही कम होती है। यदि विशेष होती हो तो कपड़े की थैली में पकड़कर मार सकते हैं।

दूसरा कीट पतंग की जाति का बाल कीट हरे रंग का होता है। वह भी पत्ते खाता है परंतु उससे भी हानि अधिक नहीं होती। यदि अधिक होती दीखे तो पौधों को हिलाकर कीट नीचे गिरा करके मारे जा सकते हैं। एक 'लीफरोलर' नाम का कीट और होता है जिसका बाल कीट कुछ भूरे रंग का होता है और पत्तों को काटकर पीप (Funnel) जैसा आकार बनाकर उसमें रहता है। चौड़े पत्ते वाले कपास में यह अधिक पाया जाता है। यह भी पतंग की जाति का कीट होता है। कोष पीप में ही बनता है जिससे पीले रंग के पतंग जिनके पर पर काली धारियां रहती हैं निकल आते हैं। मादा एक-एक करके पत्तों पर अण्डे देती है। इनका नाश भी चुन कर ही किया जा सकता है।

धड़-छेदक कीट—(Stem borer)—खेतों में कभी-कभी कपास के पौधे कुम्हलाए हुए और मरते हुए दीखते हैं। ऐसा दो कारणों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से होता है। फंगस वाली व्याधि से (Cotton wilt) या ऐसे कीट से। जब पौधा उखाड़ कर उसका धड़ और जड़ चीरकर देखी जाय तो उसमें बाल कीट सफेद मोटे सिर वाला नजर आता है। कीट से हानि किया पौधा आसानी से टूटकर खिच जाता है। विल्ट वाला आसानी से नहीं उखड़ता। यह कीट रूपांतर छाल के निकट कोष में करता है। तरुण कीट काले रंग का कवच पंखी पौन इंच से कम लंबा होता है। मादा अंडे पौधे के निकट भूमि में देती है जिनमें से बाल कीट निकल कर पौधों में घुस जाते हैं। अधिक वृद्धि न हो इसलिए मरे हुए पौधों को जलाकर बालकीट को मार डालना चाहिए।

फल, बीज और कपास को हानि पहुंचानेवाले कीट—(Pink bollworm) यह कीट पतंग की जाति का है। बाल कीट छोटा-सा गुलाबी रंग का होता है। तरुण कीट (पतंग) की मादा फलों पर अंडे देती है। एक-एक मादा एक-एक सौ तक अंडे देती है जिनसे बाल कीट निकलकर फलों में घुस जाते हैं और बीज खा जाते हैं, जिससे रुई ठीक से नहीं बन पाती और बीज तो बिलकुल खराब हो जाते हैं। कोष बीज में ही बनता है। बीज द्वारा ही यह कीट कई देशों में पहुंच गया है।

इस कीट से बचाने का यही उपाय है कि बीज अच्छे सुखाये हुए और कीट रहित हों। यदि बीज पानी में डाले जायं तो थोड़ी देर में अच्छे बीज डूब जाते हैं और कीट से हानि पहुंचाए हुए तैरते रहते हैं। तैरनेवाले बीज को नष्ट कर देना चाहिए। खेतों में ऐसे बीज डालने से वे अंकुरित तो होंगे नहीं उलटे कीट को खेतों तक पहुंचा देंगे।

इसके सिवाय स्पॉटेड बोलवर्म (Spotted bollworm) नाम के दो कीट और होते हैं। इनमें से एक के ऊपरी पर हरे होते हैं और दूसरे के परों पर त्रिभुजाकार हरी धारियां होती हैं। बाल कीट भूरे रंग के बाल-दार होते हैं। पहले ये कोमल कोंपल खाते हैं फिर फूलों की कलियों में घुस जाते हैं और जब डिंडू (फल) आते हैं तो उन्हें खाना शुरू कर देते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। जब फलों पर इसका आक्रमण होता है तो छोटे फल तो गिर जाते हैं और बड़े फलों में रुई खराब हो जाती है। ये कीट अपने कोष फलों में या भूमि में बनाते हैं।

इनके सिवाय जब फल खुलते हैं और कपास बाहर निकलता है उस समय खटमल के वर्ग के कीट फलों पर और रुई पर घूमते हुए नजर आते हैं। इनमें से एक लाल रंग का (Red cotton bug) और दूसरा भूरे रंग का (Dusky cotton bug) होता है। पहले की माता जमीन में और दूसरे की रुई पर अंडे देती है। ये फल और बीज का रस चूसकर उन्हें खत्म कर देते हैं।

इन कीटों के सिवाय 'जेसिड्स', 'एफिस,' वाइट-फ्लाई 'स्केल इंसेक्ट' भी कपास को हानि पहुंचाते हैं, परंतु वह इतनी नहीं होती कि जिसके लिए विशेष उपचार किये जायं। ये कीट जिस जाति के कपास के पत्ते मुलायम होते हैं उन्हें विशेष हानि पहुंचाते हैं; क्योंकि उनसे ये आसानी से रस खींच लेते हैं।

व्याधियां—कपास में सबसे बड़ी व्याधि तो फूलों की कलियां और छोटे-छोटे फलों के झड़ने की है। लगभग ५० शतांश कलियों से ही कपास मिलता है, वरना बहुत-सी फूलने के पहले झड़ जाती हैं और कुछ फूलने के पश्चात् छोटे-छोटे फल बनकर गिर जाती हैं। कभी-कभी तो पचास शतांश से अधिक कलियां भी झड़ जाती हैं।

कलियां झड़ने के कई कारण हैं। पौधों के पोषण में तत्वों की न्यूनाधिकता से भी गिरती हैं। ऐसा गिरना स्वाभाविक है। बहुधा छोटे-छोटे फल भी गिरते हैं।

लॉयड[1] महोदय लिखते हैं कि कपास को कृत्रिम खाद सोडियम नाइट्रेड दिया जाय तो फूलों की कलियां कम झड़ती हैं। फूल खिलते समय पानी आजाय तो गर्भाधान ठीक से नहीं होता और फलों की कलियां गिर

---

[1] N. Y. Acad. Sci. vol. 39. 1921 p. 1-131

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाती हैं। फूलों की कलियां बहुधा कीट के हानि पहुंचाने से गिरती हैं। घने बादल वाले दिन भी वे बहुत गिरती हैं।

उपर्युक्त कारणों के सिवाय यदि कपास को आवश्यकता से अधिक पानी मिल जाय तो भी कलियां गिर जाती हैं। नहर से सिंचाई जहां होती है वहां बहुधा जमीन के पानी की सतह (Water table) काफी ऊपर जाती है। ऐसे स्थानों में जब जड़ें पानी तक पहुंच जाती हैं तो वहां भी फल झड़ जाते हैं क्योंकि पौधों की जड़ों को आवश्यकतानुसार हवा नहीं मिलने से पौधों की पोषण-क्रिया में बाधा आ जाती है।

दूसरी व्याधि 'तिड़क' होती है। इस व्याधि में पत्ते लाल होकर जल्दी गिर जाते हैं और फल पूर्ण पकने से पहले ही फट जाते हैं। इससे उपज तो कम होती है साथ-साथ बीज और रुई अच्छे नहीं मिलते। जब व्याधि अधिक हो जाती है तो पौधों की बाढ़ भी अच्छी नहीं होती। उपज भी किसी-किसी साल में तो ४० शतांश तक ही हो जाती है।

दस्तूर महोदय[1] की खोज से इस बात का पता लगा है कि तिड़क की व्याधि भूमि में ना० की कमी या गर्भतल (Subsoil) में घुलनशील लवणों की अधिकता से होती है। हलकी बलुआ जमीन में जब तिड़क की व्याधि ना० की कमी से होती है तो पत्ते पहले पीले और फिर लाल होकर गिर जाते हैं। अधिक लवण वाली भूमि में भाद्रपद (अगस्त) में पौधे कुम्हला कर ऊपर से झुकने लगते हैं। इसमें पत्ते झड़ने से पहले पीले नहीं पड़ते।

इस व्याधि से बचने के उपाय ये हैं कि जहां ना० की कमी मालूम पड़े वहां ना० का खाद दे दिया जाय और जिस भूमि में लवण की अधिकता हो वहां कपास देरी से बोया जाय अर्थात् आषाढ़ से पहले न बोया जाय। जैसा पहले बतलाया गया है देरी से बोने से पौधों की दूरी

---

[1] Dastur R. H. 1944. Sci. Monograph No. 2 of the Indian Central Cotton Committee.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कम कर देनी होगी और बीज कुछ अधिक गिराना होगा।

तीसरी व्याधि 'मुर्झान' यानी विल्ट (Wilt) नाम की होती है। इससे पौधों की जड़ों में एक प्रकार की फंगस घुस जाती है और वह इतनी बढ़ आती है कि पौधों के पोषण के लिए खाद्य पदार्थ जाने के जो मार्ग होते हैं वे बंद हो जाते हैं और पौधे मर जाते हैं। व्याधिग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए। जब व्याधि अधिक बढ़ती नजर आवे तो फसल का हेर-फेर मूंगफली के साथ कर देना चाहिए। जहां तक बने ऐसी जाति बोनी चाहिए जिसपर विल्ट का आक्रमण न हो। बंबई प्रांतीय कृषि विभाग ने बी० डी० ८ नंबर की ऐसी जाति निकाली है जिस पर विल्ट का असर बहुत कम पड़ता है।

फसल की तैयारी और उपज—कपास की फसल की तैयारी जानने में कोई कठिनाई नहीं होती। कपास के फल जिन्हें कहीं-कहीं डिण्डू कहते हैं खुलकर अपना कपास लटका देते हैं। ऐसे फल कपास की जाति अनुसार प्रत्येक पौधे पर सात-आठ से लेकर चालीस-पचास तक होते हैं। जब बहुत-से फल खुल जाते हैं तो कपास चुना जाता है। साधारणतः चुनाई कम-से-कम तीन बार होती है और अंत में जो फल बिना खुले रह जाते हैं उन्हें तोड़कर घरों में उनसे कपास निकाल लेते हैं। पहली चुनाई में लगभग ३५% दूसरी में ४५% और तीसरी चुनाई में से शेष कपास चुना जाता है।

कपास चुनने का काम बड़ा कठिन होता है। इसके लिए जहां कपास के पेड़ छोटे होते हैं वहां तो दिन भर झुका ही रहना पड़ता है। चुनने में भी जिन्हें अच्छा अभ्यास होता है वे तो प्रत्येक फल में से पूरा कपास निकाल लेते हैं और इसका भी ध्यान रखते हैं कि उसमें फलों पर के पत्ते (Bracts) वगैरह कपास के साथ न आयें। छोटे-छोटे कृषकों के यहाँ तो कपास की चुनाई उनके घर के लोग ही कर लेते हैं। जहां क्षेत्रफल अधिक होता है वहां मजदूरों से चुनवाना होता है। कपास के चुनने में सावधानी भी बहुत रखनी होती है वरना कपड़े भी फटते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपास की चुनाई बहुधा ठेके से होती है इसलिए मजदूर जल्दी काम करते हैं। इससे उनमें कुछ पत्ते मिल ही जाते हैं। ठेके में भी पहली दो बार की चुनाई में जब कपास अधिक रहता है तो मजदूर काफी मिल जाते हैं। तीसरी चुनाई के लिए तो रोजाना मजदूरों से ही काम कराना होता है इसके सिवाय चुनाई के खर्चे में कपास की जाति का भी काफी असर पड़ता है। जिन जातियों के फल बड़े-बड़े होते हैं उनके चुनने में सरलता रहती है। चुनने वाला थोड़े समय में अधिक चुन लेता है। अधिकतर ऐसे कपास जिनका रेशा लम्बा और रुई मुलायम रहती है उनके फल छोटे होते हैं सो चुनने वाले हिचकते हैं या अधिक दर मांगते हैं।

अमेरिका में कपास चुनने की कई प्रकार की कलें भी निकली हैं; परंतु अभी तक वहां भी चुनाई हाथ से ही होती है। कपास के सब फल एक साथ नहीं फटते इससे मशीन द्वारा चुनने में बाधाएं आती हैं। सफाई के विचार से भी देखा जाय तो मशीन द्वारा चुनने में कपास के पत्ते मिल ही जाते हैं और चुनाई भी पूरी-पूरी नहीं होती।

हमारे देश में कपास मजदूरों से चुनाया जाता है और जहां पर्दे का विशेष विचार नहीं होता वहां पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां ही इस कार्य को अच्छा करती हैं। अगर कपास बड़े फल वाला अच्छा खिला हुआ होता है तो एक स्त्री लगभग बीस सेर तक चुन लेती है। यदि कपास की उपज छः मन प्रति एकड़ ली जाय तो कुल बारह मजदूर लगेंगे।

चुनाई का चुकारा जैसा कि ऊपर बतलाया गया है ठेके से या रोजाना मजदूरी से होता है। कहीं-कहीं भाग बटाई से भी चुनवाना पडता है।

कपास चुनने के लिए मजदूर अपनी पीठ पर कपड़े की झोली बांध लेते हैं और कपास चुनकर उसीमें डालते रहते हैं। जब काफी इकट्ठा हो जाता है तो कपड़ों की गठरियों में या टोकरों में भरकर कृषकों के घर ले जाते हैं जहां वजन करके मेहनताना चुकाने का हिसाब किया जाता है। कभी-कभी खेतों पर ही वजन करके जमींदार अपनी गाड़ी में भर कर ले आते हैं। जहां भाग बटाई से चुना जाता है वहां चुननेवाले को ठहराव के अनुसार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कपास दे दिया जाता है। कहीं-कहीं चुनाई का बीसवां भाग तो कहीं-कहीं सोलहवां भाग देना होता है। अंतिम चुनाई में जब कपास बहुत कम रह जाता हैं तो आधे हिस्से पर भी चुनवाना पड़ता है।

पंजाब में कपास की चुनाई आश्विन-कार्तिक (सितम्बर, अक्तूबर) से प्रारंभ होकर माघ (जनवरी) तक होती है। उत्तरप्रदेश में कार्तिक से पौष (अक्तूबर से दिसम्बर) तक, मध्यभारत में मार्गशीर्ष से फाल्गुन (नवम्बर से फरवरी) मध्य प्रदेश और बरार में कार्तिक से माघ (अक्तूबर से दिसम्बर-जनवरी), खानदेश में कार्तिक से पौष, गुजरात में माघ से वैशाख (जनवरी से अप्रैल), दक्षिण बम्बई, मद्रास इत्यादि स्थानों में माघ से आषाढ़ (जनवरी से जून तक) चुनाई का कार्य चलता रहता है। चुनाई का समय बरानी फसल की अपेक्षा सिंचाई वाले खेतों में कुछ अधिक लंबा हो जाता है।

उपज[1]—समस्त भारत की रुई की उपज १·१ मन प्रति एकड़ पड़ती है जिसे कपास के रूप में गिना जाय तो ३·३ मन कपास होगा। अमेरिका तथा मिस्र की उपज से तुलना की जाय तो यहां की औसत उपज बहुत कम है। अमेरिका की औसत रुई की उपज लगभग हमारे यहां की उपज से दूनी और मिस्र में करीब-करीब चौगुनी होती है।

कृषि विभाग द्वारा चुने हुए बीज लगाने से उपज अधिक होती है। उदाहरणार्थ मध्य प्रदेश में देशी जड़ी कपास की उपज २.५ मन प्रति एकड़ पड़ती है तो कृषि विभाग द्वारा चुनी हुई जातियों के बीज बोने से उपज दूनी से भी कुछ अधिक होती है।

---

[1] सन् १९२२ से १९३५ तक की औसत उपज देखी गई तो अमेरिकन कपास की ५·२६ मन और देशी की ४·०५ मन प्रति एकड़ पड़ी (ibid Scientific Monograph. No. 2.p.7-8) देशी की कम उपज का कारण यह भी है कि अच्छी उपजाऊ भूमि में अधिकतर अमेरिकन कपास ही लगाये जाते हैं और देशी हलकी भूमि में बोते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वितरण और व्यवसाय—कपास का मुफ्त वितरण गेहूं-चांवल जैसा तो नहीं होता परंतु दान के लिए कृषक थोड़ा बहुत निकाल ही देते हैं। जब गाड़ियां भरकर जाती हैं तब बीच में भिक्षुक मांग लेते हैं तो थोड़ा-थोड़ा कपास कुछ कृषक दे देते हैं। इसके सिवाय जहां बटाई से कपास चुना जाता है वहां कुछ कपास मजदूरों को देना पड़ता है और शेष को कृषक अपने घरों में जमा करके रखते हैं जबतक कि बिकने जितनी मात्रा में इकट्ठा नहीं हो जाता। बिकने के पहिले यदि बीज उधार लिया हो तो उसके बदले में ठहरांया हुआ कपास देना होता है और यदि साहूकार से ऋण लिया हुआ हो तो उसके चुकाने के लिए साहूकार के कारिंदे कपास ले जाते हैं। इन सब से बचा हुआ माल बाज़ार में बिकता है। यदि थोड़ा हुआ तो स्थानीय व्यवसायी ही खरीद लेते हैं। अधिक होने मे जहां जीन-घर होते हैं वहां के शहरों तक माल ले जाना होता है।

आजकल भारतवर्ष में जगह-जगह कॉटन मार्केट[1] खुले हुए हैं जिनकी कार्य प्रणाली कानूनी नियमानुसार चलती है। जब कृषक अपनी गाड़ियां काटन मार्केट में ले जाते हैं तो वहां पर उनके माल के अनुसार अर्थात् कपास लम्बे रेशे वाला या छोटे रेशे वाला पहली, दूसरी या तीसरी चुनाई का है अथवा उसमें पत्तों के टुकड़े का मिश्रण कितना है अथवा उसका रंग कैसा है इत्यादि बातों को ध्यान में रखकर उसका मूल्य ठहराया जाता है या गाड़ियां नीलाम होती हैं। इस प्रकार से बिक जाने पर जो व्यापारी खरीदता है जीनघरों के कम्पाउन्ड में उसकी ढेरी पर माल गिरा दिया जाता है। ढेरी बेच दी जाती है या ढेरी वाले स्वयं जीन के कारखानों द्वारा रुई कपास पृथक् करा कर बेचते हैं।

कपास ओटना (Ginning)

छोटे कृषक तो कपास ही बेच देते हैं लेकिन बड़े कृषक या जमीदार जो खेती के साथ लेन-देन या व्यापार भी करते हैं अपने ही कपास को

[1] कपास बिक्री के बाजार।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओटवाते हैं ताकि रुई बेच दी जाय और बीज बीजवारे के लिए वितरण करने, पशुओं को खिलाने तथा बेचने के काम आ जाय।

कपास ओटने का कार्य——जब काम कम होता है तो देशी चरखे से घर पर ही ओट लेते हैं। इसमें कहीं-कहीं एक और कहीं दो मजदूर लगते हैं। इसमें एक लोहे की छड़ और एक लकड़ी का डंडा मिले हुए रहते हैं और एक दस्ते द्वारा ऐसे घुमाये जाते हैं कि उनके बीच में कपास दिया जाय तो रुई ऊपर की ओर चली जाती है और बीज नीचे गिर जाता है।

वर्तमान समय में जीन के कारखाने बहुत बन गये हैं जिनमें बड़े-बड़े रोलर (Roller gins) या आरा (Saw gins) वाले चरखे होते हैं। छोटे कारखानों में तो भारतवर्ष में अभी रोलर जीन ही काम में लाये जाते हैं। इनमें लोहे की तेज पत्ती (Knives) के साथ चमड़े का रोलर रहता है। मजदूर चरखे के पीछे कपास के पास बैठा-बैठा कपास रोलर की तरफ फेंकता रहता है। रोलर रुई पकड़ कर सामने की ओर निकालता रहता है और बीज जाली में से होकर नीचे गिरते जाते हैं।

बड़े-बड़े कारखानों में आरे वाले जीन होते। इनमें गोल आरे घूमते हैं और उन्हींकी मदद से बीज रुई अलग होते हैं।

कुछ कारखाने तो ऐसे बड़े-बड़े होते हैं कि वहां मजदूरों की अधिक आवश्यकता नहीं होती। गाड़ियों में से कपास नलों द्वारा खींचकर कारखाने में चला जाता है जहां पहले कपास की सफाई होती है जिसमें से धूल और पत्तों के टुकड़े इत्यादि झड़कर अलग हो जाते हैं। कपास जाकर जालियों से टकराता है जिससे धूल और पत्तों के टुकड़े और भी टूटकर नीचे गिर जाते हैं। उसके बाद ओटाई का काम होता है और रुई की पक्की गाठें तक तैयार हो जाती हैं। यह सब मशीनों द्वारा होता है भारतवर्ष में रुई की पक्की गांठ चार सौ पौंड [1] की, अमेरिका में पांच सौ पौंड की और मिस्र में सात सौ पौंड तक की होती है। पक्की गांठों पर

---

[1] साढ़े बयासी पौंड का एक मन होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भारतवर्ष में चट्टी चढ़ाई जाती है परंतु वह ऐसी चढ़ाई जाती है कि बाजू से कभी-कभी खुल जाती है। मिस्र में केनवास चढ़ाया जाता है। वहां का कपास इस जगह के कपास से उत्तम और लंबे रेशे वाला होता है। गांठें फिर मिलों में चली जाती हैं जहां सूत और कपड़ा बनता है।

कपास की पहिचान—भारतवर्ष में बंबई में कॉटन टेक्नालॉजीकल इन्स्टीट्यूट बना हुआ है वहां जगह-जगह के कपास की जांच होती रहती है। साधारणतः कपास की जांच में निम्नलिखित बातें जांची जाती हैं।

(१) रंग

(२) कूड़ा करकट

(३) कपास में रुई बीज की निष्पत्ति

(४) कपास के रेशे की लंबाई—बीज पर से कपास दोनों तरफ फैलाकर उसका रेशा नापा जाता है। बीज से अंत तक के रेशे की लंबाई नापी जाती है। लंबे रेशे वाले का मूल्य अधिक प्राप्त होता है। रेशे की लंबाई भूमि और जलवायु के अतिरिक्त कपास की आयु पर भी बहुत कुछ निर्भर है। जहां कपास की बाढ़ को अधिक समय मिलता है वहां का अथवा जहां कपास की जाति अधिक आयु वाली होती है उस जाति का रेशा अधिक लंबा होता है

(५) रेशे की ताक़त—मशीन से जांची जाती है

(६) रेशे का मुलायमपन

(७) रेशे की समानता—बीज पर जितने रेशे हों उनकी समानता भी देखी जाती है।

कपास के व्यवसाय में कुछ शब्द जो काम में आते हैं उनका परिचय शिक्षित कृषकों को करा देना यहां अनुचित नहीं होगा।

काउंट—डोरे की महीनता नापने में 'काउंट' शब्द का प्रयोग होता है। एक काउंट उस डोरे को कहते हैं जिसकी लंबाई ८४० गज हो। जब यह कहा जाय कि एक पौंड रुई में हमें २०० काउंट मिलते हैं तो उसका अर्थ यह हुआ कि उस रुई में एक पौंड में हमें ८४० गज लंबे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२०० टुकड़े यानी १६८०० गज लंवा डोरा मिलेगा। यह स्वाभाविक वात है कि जिस रुई का रेशा मोटा होगा उससे कम काउंट्स मिलेंगे। किसी-किसी कपास की रुई से ७०० काउंट तक भी प्राप्त हो सकते हैं परंतु साधारणतः २०० काउंट तक की रुई मिलती है। लिखने के लिए १००'s (अंग्रेजी अक्षर एस) लिखा जाता है।

उपयोग और गुण—कपास का मुख्य उपयोग भांति-भांति के कपड़े वनाने के लिए किया जाता है। नकली रेशम भी कपास का वनाया जाता है। मिलों में जितना कपास जाता है उसका पचहत्तर शतांश के लगभग अच्छा कपड़ा वनाने के काम में आता है। शेष २५ शतांश के करीव खराव कपास (Waste cotton)[1] निकलता है, जिसकी फिर छंटनी होकर कंवल, तौलिये, नकली फलालेन, (Flannelettes) इत्यादि बनाते हैं। कुछ कपास ऊन के साथ मिलाकर भी काम में लाया जाता है। रस्से, दरियां इत्यादि भी ऐसे कपास से वनाते हैं। मशीन व एंजिन वगैरह पोंछने के लिए जो 'कॉटन वेस्ट' कहलाता है वह भी ऐसे ही कपास का होता है।

कपास के वीज वोने तथा पशुओं को खिलाने के काम में लाये जाते हैं। इनसे तेल भी निकलता है जिससे 'वेजिटेविल' नकली घी बनाते हैं। इसका उपयोग साबुन बनाने के लिए भी किया जाता है। खली खाद के काम आती है। कपास की डंडियां टोकरी वनाने के तथा जलाने के काम आती हैं। फलों के छिलके भी जलाये जाते हैं।

बिनौले में तेल—लेदर महोदय[2] के अन्वेषणानुसार भारतीय बिनौले में औसत तेल निम्नलिखित मात्रा में मिला—

मद्रास	२६ नमूनों का औसत	१७·४१%

---

[1] Barber J. L. 1921. Cotton waste and its value as raw material. Report World Cotton Conference 1921.

[2] Mem. Chem. Series Vol 1 No. 2 1907.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वंबई	१६ नमूनों का औसत	१७·६६%
मध्य प्रदेश	१५ ,, ,, ,,	१६·६५%
संयुक्त प्रांत	१५ ,, ,, ,,	१६·८६%

अमेरिकन कपासिये में ३० शतांश से अधिक तेल रहता है। वीज भी हमारे यहां के कपास के वीज से वड़ा होता है।

कपासिये के पोषक द्रव्य—

जल	आमिष जातीय पदार्थ	स्नेह	सर्करायुक्त	खनिज	तन्तुयुक्त
६%	१६%	१८%	३४%	४%	१६%

छिलका सहित खली में खाद के द्रव्य की मात्रा—ना० २·५%, फा० पे० १·२%, पो० आ० १·१%। छिलका रहित खली में इन द्रव्यों की मात्रा दूनी पाई जाती है।

गुण—रुई के कपड़े, रजाइयां और गद्दे इत्यादि बनाते हैं तो इनसे शरीर की रक्षा होती है। वीज दूध वाले पशुओं को खिलवाये जायं तो मक्खन गाढ़ा और घी दानेदार होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: २ :

पाट

Jute, *Corchorus Capsularis, Corchorus olitarius.*

पाट दो जाति का होता है। एक के फल कुछ गोल और दूसरे के फली जैसे लंबे होते हैं। गोल की अपेक्षा फली वाले में बीज विशेष होते हैं। पत्ते सन के पत्ते जैसे लेकिन चार-पांच इंच लंबे और डेढ़ इंच चौड़े होते हैं। फूल छोटे-छोटे कपासी रंग के होते हैं। भूमि की उर्वरा शक्ति अनुसार पौधों की ऊंचाई पांच-छः फुट से लेकर आठ-दस फुट तक की होती है। वैसे बहुत अच्छी भूमि में कहीं-कहीं चौदह-पंद्रह फुट ऊंचे पौधे भी पाये जाते हैं। जिस प्रकार सन के पौधे की छाल से सन निकालते हैं उसी भांति इससे भी निकालते हैं। इसकी खेती विशेषतः बंगाल में और आसाम बिहार और उड़ीसा के कुछ भागों में होती है। उत्तर प्रदेश[१] भी इसकी खेती की ओर ध्यान दे रहा है।

पाट की व्यावसायिक जातियां वुड हाउस[२] महोदय के मतानुसार मोटे तौर पर सात मानी गई हैं। वैसे चौधरी महोदय[3] ने जो-जो नाम अपनी पुस्तक में दिये हैं उन्हें देखा जाय तो अनेक जातियां होती हैं। व्यावसायिक वर्णन में जिन सात मुख्य जातियों की गणना है वे

---

[१] Dexelopment of Agriculture and Animal Husbandry in U. P.

[२] Woodhouse, T. and Kilgour. P. 1929. Jute and Jute spinning P 10.

[3] Chaudhari, Jute in Bengal 1921.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निम्नलिखित हैं—

(१) नारायण गंजी (२) सिराज गंजी (३) देशी (४) दोवड़ा (५) विमली पट्टम (६) टोसा (७) ढाका और चटगांवी।

इनमें से नारायण गंजी का रंग दूधिया और तागा मजबूत होता है जो बुनने में ताने के काम में लाया जाता है। सिराज गंजी हलके नीले रंग का होता है। इसका तागा कमजोर होता है और बाने के काम में लाया जाता है। देशी मुलायम, भूरे रंग का कुछ कमजोर होता है। दूसरी जाति के पाट के साथ मिलाकर काम में लाया जाता है। दोवड़ा काले रंग का कमजोर होता है और विशेषतः रस्सों के काम में लाया जाता है। विलमीपट्टम का सन भूरे रंग का होता है। रेशा देशी जैसा लेकिन उससे कुछ मजबूत साफ और चमकीला होता है। ढाका का और चटगांवी करीब-करीब नारायण गंजी जैसे ही होते हैं।

जलवायु—इसकी बाढ़ गर्म वातावरण में अच्छी होती है। तापमान जिन स्थानों का ८०° फे० से कम न हो वे स्थान अच्छे माने गये हैं। वर्षा भी ७०-८० इंच के लगभग और सम हो तो बाढ़ उत्तम होती है। इसके सिवाय ताग निकालने के लिए पौधों को कुछ दिन तक पानी में सड़ाना होता है सो निकट में इसके लिए सजीव नदियां या तालाब भी होने चाहिएं। चूंकि ऐसे साधन बंगाल और उसके पास के प्रांतों में विशेष है इसलिए वहां इसकी खेती बहुतायत से होती है।

भूमि और जुताई—यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाता है; परंतु पहाड़ी हिस्सों की उपजाऊ बलुआ या बलुआ-दुमट मिट्टी में जो पाट होता है उसका ताग रंग तथा मजबूती के विचार से बहुत ही उत्तम होता है परंतु ऐसे स्थानों में पाट की खेती कम ही होती है। अधिकतर पाट उस कछार भूमि में उपजाया जाता है जहां नदियां बाढ़ के दिनों मिट्टी फेंक कर भूमि को उपजाऊ बना देती है। पाट की खेती ऐसी भूमि में भी होती है जहां बरसात में पानी भरा रहता है ऐसे स्थानों में पाट जल्दी बो दिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाता है ताकि बरसात आते-आते वह इतना बढ़ जाय कि पानी से दब न जाय।

जहां जल्दी बोना होता है पौष-माघ के पहले जमीन तैयार कर लेनी चाहिए। चूंकि बंगाल के बैल बहुत छोटे-छोटे होते हैं, खेती के यंत्र भी हलके ही बनाने पड़ते हैं इसलिए हलों से जुताई पांच-छः बार करनी पड़ती है। ढेले तोड़ने के लिए पटार (सोहागा) काम में लाई जा सकती है। ऊंची जमीन में जहां वैशाख (अप्रेल-मई) तक बोते हैं वहां भूमि की तैयारी देरी से की जा सकती है।

खाद और हेर-फेर—खाद तो पहाड़ी ऊंची जमीन में देना होता है सो लगभग १५० मन गोबर का खाद देना चाहिए। कृत्रिम खाद या खली का खाद देना हो तो पंद्रह-बीस सेर ना० पहुंचे इतना खाद देना उचित होगा; परंतु कुछ प्रयोगों में पाट के लिए खली उतनी अच्छी सिद्ध नहीं हुई जितना गोबर का खाद। जिस भूमि पर नदियां अपना पानी फेंकती रहती हैं वहां खाद देने की आवश्यकता नहीं होती।

हेर-फेर बहुधा आमन धान के साथ किया जाता है। पटुआ श्रावण (जौलाई) तक तैयार हो जाता है और बाद में जल्दी से जुताई करके आमन धान रोपा जा सकता है। कहीं-कहीं ऐसा भी करते हैं कि एक साल औस धान, आलू व सरसों लेकर दूसरे साल पाट और आमन धान लेते हैं।

बीज और बोआई—इसके लिए चार-पांच सेर बीज प्रति एकड़ छींटकर बोये जाते हैं। यदि कतारों में बोना हो तो आठ-नौ इंच की दूरी पर कतारें रखनी चाहिएं। छींटने के बाद बीज को दतारी या हेरो से मिट्टी में मिला देना चाहिए। जिस जमीन में बरसात में पानी भरा रहता है उसमें माघ-फाल्गुन (फरवरी) में बो देते है ताकि बाढ़ आते-आते पौधे इतने ऊंचे हो जायं कि वे डूब न जायं। जो जमीन बलुआ और ऊंची हो जिसमें तरी सूख जाने से बीज ठीक से अंकुरित न हो उसमें जल्दी बोना होता है। उपर्युक्त स्थिति से बीच वाली भूमि में फाल्गुन से वैशाख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(फ़रवरी से अप्रैल मई) तक वो सकते हैं। पाट के वीज सव जगह अच्छे नहीं होते। वंगाल में वीज आसाम और विहार से ले जाते हैं।

निंदाई और देखभाल—जब पौधे दो-तीन इंच ऊंचे हो जायं तो निंदाई की क्रिया आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। साधारणतः दो-तीन निंदाई देना होती हैं। जबतक पौधे एक फुट की ऊंचाई तक पहुंचें उन्हें छांटते भी जाना चाहिए। जो फसल वीज के लिए ली जाय उसमें पौधों के वीज का अंतर लगभग डेढ़ फुट का रखना उत्तम होगा। जो पौधे ताग के लिए रक्खे जायं उनमें विशेष शाखाएं न फूटें इसलिए चार-पांच इंच का अंतर अच्छा होगा।

सिंचाई—सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, परंतु यदि सुविधा हो और वोने के समय तरी कम मालूम हो तो पानी देकर भूमि में तरी ले आनी चाहिए।

कीट और व्याधियां—कीट में पतंग की जाति के तीन कीट इसे हानि पहुंचाते हैं। इसमें पहले का नाम इण्डीगो केटरपिलर (Indigo catter-pillar) हैं। इस कीट की मादा पत्ते पर अण्डे देती है जो इकट्ठे ही रहते हैं। अंडों से दो-तीन दिन में वाल कीट निकलकर पत्ते खाना शुरू कर देते हैं। वाल कीट लगभग दो सप्ताह की आयु के वाद पत्तों में कोष वनाते हैं और एकाध सप्ताह वाद तरुण कीट के रूप में निकल आते हैं। इससे वचाने के लिए चूंकि अंडे इकट्ठे दिये जाते हैं उन्हें नष्ट कर सकते हैं दूसरे कीट का नाम जूट सेमीलूपर (Jute semilooper) है। इसका वालकीट वढ़ती हुई कोमल कोंपलों को खाता है। इसकी मादा एक-एक करके डेढ़ सौ से दो सौ तक कोंपलों पर अंडे देती है जिनमें से दो-तीन दिन में वालकीट निकलकर कोंपलें खाना शुरू करते हैं और पंद्रह दिन के वाद कोष वनाते हैं जिनमें से तरुण कीट निकल आते हैं। पौधों को हिलाने से वालकीट नीचे गिर जाते हैं और मारे जा सकते हैं।

तीसरे कीट का वालकीट वालदार होता है। इसकी मादा चार-सौ से एक हजार तक अंडे देती है जिनसे तरुण कीट निकलकर पत्ते खाते हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं चारों ओर धावा बोल देते हैं और फसल को काफी हानि पहुंचाते हैं। दो-तीन सप्ताह में तरुण कीट भूमि में कोष बनाता है।

इन तीनों के तरुण कीट पतंग होते हैं जो रोशनी पर आकर्षित कर मारे जा सकते हैं ताकि वे आगे वंश-वृद्धि न कर सकें।

इन कीट के सिवाय घुन की जाति का एक कीट काले रंग का होता है। वह पौधों के धड़ में पत्ते के जोड़ की जगह छेद करके घुस जाता है। इससे ऐसी हानि नहीं होती जिसकी ओर विशेश ध्यान दिया जाय।

व्याधियां—ऐसी नहीं होती जिनकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता हो।

फसल की तैयारी और उपज—बोने के समय से अच्छी भूमि में लगभग चार महीने में फसल तैयार हो जाती है। जब इसके फूल झ ने लगें तब इसे काटना चाहिए। ऐसी आयु पर काटने से सन मजबूत होता और उपज भी अच्छी आ जाती है। यदि बीज पकने पर काटा जाय तो उपज तो कुछ विशेष होगी परंतु सन अच्छा नहीं होगा और डंडी से जल्दी छूटेगा भी नहीं। इसके विपरीत यदि फूल आने लगे उस समय काटा जाय तो सन तो मुलायम होगा—डंडियों से जल्दी छूटेगा भी परंतु वह अच्छा मजबूत नहीं होगा। उपज भी कुछ कम ही बैठेगी। हरे पौधों का वजन प्रति एकड़ तीन सौ से चार सौ मन तक आ जाता है। जिससे बीस-पच्चीस मन पाट मिल जाता है। पाट छुड़ाने पर जो डंडियां बच जाती हैं उनकी उपज पचास-साठ मन प्रति एकड़ तक होती है जहां बीज उपजाये जाते हैं वहाँ बीज की उपज छः-सात मन तक होती है।

पाट छुड़ाने की रीति—फसल को काट लेने के पश्चात् पौधों को दो-चार रोज के लिए खेतों में छोड़ देते हैं ताकि पत्ते वहीं झड़ जायं और खाद का काम दें। कहीं-कहीं पत्ते हाथ से भी छुड़ा देते हैं और कहीं-कहीं पौधों के ऊपरी भाग टहनियों सहित काट देते हैं। इसके बाद आठ-नौ इंच व्यास की पिंडियां बना कर उन्हें पानी में डालते हैं। ऐसा करने से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक प्रकार के सूक्ष्म जंतु द्वारा जिस पदार्थ से ताग डंडी के साथ जुड़ा रहता है, वह गलकर नष्ट हो जाता है और पाट आसानी से छुड़ा लिया जाता है। पिंडियां पानी में डूबी रहें इसलिए उनपर मिट्टी के ढ़ेले रख देते हैं। जहां नदियां या सजीव नाले होते हैं वहां बहते पानी में डुबाते हैं। जहां नदियां नहीं होतीं वहां तालाब या पोखरों में डुबाते हैं। चूंकि फसल बरसात में तैयार होती है और जहां पाट होता है वहां पानी की कमी भी नहीं होती इसलिए पानी में कुछ दिन तक रखकर ही ताग छुड़ाते हैं फिर भी जहां कहीं पानी खेतों से दूर हो तो पौधों को खेतों में ओस में रखकर भी ताग छुड़ा लेते हैं। पानी में कितने दिन रखना यह तापमान और पाट की जाति पर निर्भर है। साधारणतः आठ-दस दिन से लेकर पंद्रह-बीस दिन तक सड़ाना पड़ता है। कभी इससे भी अधिक समय लगता है। गले हुए पौधों को बार-बार देखना भी पड़ता है क्योंकि यदि अधिक गल जाय तो ताग टूटने लगता है और कम गले तो ताग पूरा छूटता नहीं। इसलिए पिंडियों में से कुछ पौधे निकालकर नीचे की डंडी तोड़कर देखते हैं कि ताग जल्दी छूटता है या नहीं। यदि नीचे से ऊपर तक का ताग आसानी से निकल आय तो समझना चाहिए कि पाट ताग छूट जावे इतना गल गया।

ताग छुड़ाने के लिए थोड़ा हुआ तो कृषकों की स्त्रियां घर पर लाकर छुड़ा लेती हैं। वह इस तरह छुड़ाया जाता है कि अंदर का काष्ठ टूटे नहीं क्योंकि वह छप्पर बनाने के काम आता है। सिर्फ नीचे का चार-पांच इंच का टुकड़ा नष्ट होता है। कहीं-कहीं जैसे सन का ताग बहते पानी में गले हुए पौधों को पीटकर छुड़ाते हैं इसका ताग भी उसी तरह से छुड़ाते हैं। इसके लिए दो लकड़ी के खंभे गाड़कर पानी की सतह के बराबर एक आड़ी लकड़ी बांधकर उसपर भी पीटते हैं। इस रीति से निकालने से बीच का काष्ठ तो नष्ट हो जाता है परंतु कम परिश्रम से ताग छूट जाता है। छुड़ाते हुए ताग को फिर धोकर साफ करना होता है। इसके बाद सुखाकर के छोटे बंडल बांधकर बेच दिया जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वितरण और व्यवसाय—धुले हुए सन को स्थानीय व्यापारी कृषकों से खरीदकर मिलों तक पहुंचा देते हैं। पाट के ताग का मूल्य ताग की लंबाई, चमक, रंग, मुलायमता और किस कार्य के योग्य है इस पर निर्भर रहता है। इसका चालान भी काफी होता है। अनुमान है कि लगभग चालीस शतांश पाट बाहर जाता है और साठ शतांश की खपत भारत में होती है।

उपयोग और गुण—पाट से अनाज और चीनी भरने के बोरे बनाने के थान कपास की गांठों पर अथवा अन्य वस्तुओं पर चढ़ाने की चट्टियां, टाट, पट्टियां, परदे, कुर्सी के कपड़े, गलीचे, रस्से इत्यादि पदार्थ बनाते हैं। एक खास रीति से तेल और पानी से इसका ताग ऐसा मुलायम किया जाता है कि जिससे रेशम के कपड़े जैसे कपड़े बनते हैं। रस्से और छोटे टाट तो कई कृषक ढेरे, तकली या घुरघुरे से सुतली काटकर उससे बना लेते हैं। जो पाट उपर्युक्त वस्तुओं के लिए नहीं होता उससे कागज भी बनाते हैं। बीज में से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है जिसका उपयोग चर्म रोगों के लिए किया जाता है। बीज में २० शतांश के लगभग तेल रहता है। बीज पशुओं के लिए हानिप्रद है, पशुओं से बचाकर रखना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: ३ :

सन

San hemp, *Crotalaria Juncea.*

सन का पौधा साधारणतः पांच-छः फुट ऊंचा होता है और यदि भूमि अच्छी हुई तो सात-आठ फुट ऊंची वाढ़ भी हो जाती है। इसे घना बोया जाता है ताकि पौधों की वाढ़ ऊंची हो और सन (ताग) लंबा प्राप्त हो। इसके पत्ते दो-तीन इंच लंबे व पतले होते हैं। ज्यों-ज्यों पौधा वढ़ता जाता है नीचे के पत्ते झड़ते जाते हैं जिनके खेतों में सड़ने से भूमि का उर्वरापन वढ़ जाता है। आश्विन में इसके सिर पर पीली पंखड़ियों वाले सुन्दर फूल खिलते हैं जो टहनियों पर एक फुट की लंबाई तक भरे रहते हैं। इसके फल पौन इंच से एक इंच लंबे फूले हुए रहते हैं जिनके सूखने पर उनके वीज खड़खड़ाते रहते हैं। वीज चपटे चमकीले काले या स्लेटी रंग के होते हैं।

सन का पौधा दाल वर्ग का होता है, जिसकी जड़ों पर भी भूरी-भूरी गठानें होती हैं, जिनमें सूक्ष्म जंतु रहकर वायु-मंडल की ना० संचित करते हैं और भूमि की उर्वरा शक्ति वढ़ाते हैं।

जलवायु—इसकी फसल ऊष्ण और शीतोष्ण भागों के मैदानों में अच्छी होती है पहाड़ों पर अच्छी नहीं होती। वर्षा भी इसके लिए चालीस से साठ इंच तक की अच्छी होती है अधिक वर्षा वाले स्थानों में पाट अच्छा होता है।

भूमि और जुताई—सन के लिए दुमट और वलुआ दुमट मिट्टी उत्तम होती है। भारी मटियार में पानी लगा रहने से वाढ़ उत्तम नहीं होती। मटियार दुमट में जहां पानी का निकास या नितार अच्छा हो वहां भी सन अच्छा हो जाता है। सन दुमट और वलुआ दुमंट में होता है उसका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रेशा अपेक्षाकृत मटियार मिट्टी के रेशे से अच्छा होता है।

खाद और हेरफेर—साधारणतः इसको खाद नहीं दिया जाता। वह स्वयं हरे खाद के लिए ही कई जगह उपजाया जाता है। जहां इसे हरे खाद के लिए उपजाया जाय वहां तीन-चार मन हड्डी का चूरा प्रति एकड़ छींटकर इसे बोया जायगा तो उत्तम होगा। हड्डी के चूरे के अभाव में सुपरफासफेट ढाई मन के लगभग दे देना चाहिए।

सन का हेरफेर कई फसलों के साथ किया जाता है। सबसे पहले तो जब नई जमीन जोती जाती है तो उसमें सन बोना अच्छा होता है। ऐसे सन को हरे खाद के लिए गाढ़ देना चाहिए। वर्तमान समय में गन्ने की खेतीवाले अधिकांश स्थानों में सन के खाद से लाभ उठाया जाता है। जहां सिंचाई की अच्छी सुविधा हो वहां गेहूं के पहले भी इसे उपजाकर खाद के काम में ला सकते हैं। सन के खादवाले खेतों से अन्य रबी की फसलें जैसे सरसों, आलू इत्यादि भी ली जा सकती हैं। जिन स्थानों में धान होता है वहां धान के साथ भी हेरफेर किया जाता है। दक्षिण की तरफ कहीं-कहीं धान के बाद इसे ले लेते हैं। जिन धान के खेतों में काटते समय तरी रहती है उनमें सन के बीज धान की फसल के तैयार होने पर छींट देते हैं। धान काटने पर सन बढ़ता रहता है और बाढ़ काफी हो जाती है तो इसे गाढ़ देते हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि धान और सन एक साथ बो देते हैं और जब सन कुछ बड़ा होता है तो उसपर पठार चला देते हैं। ऐसा करने से सन के पौधे टूट जाते हैं और जब खेतों में पानी बढ़ जाता है तो ऐसे पौधे सड़ जाते हैं और धान के पौधे नई जड़ें फेंककर जम जाते हैं। बगीचेवाली सूरन जैसी फसल के साथ भी सन बो देते हैं और सन को काटकर बीच की भूमि में गाढ़ देते हैं।

बीज और बोआई—सन के बीज बहुत जल्दी अंकुर फेंकते हैं। यदि भूमि में तरी अच्छी रही तो तीसरे दिन ही अंकुर भूमि के बाहर निकल आते हैं। इसके बीज की मात्रा तीस सेर से एक मन तक की होती है। जिस फसल से सन का रेशा प्राप्त करना हो उसके लिए तो एक मन बीज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डालना उत्तम होगा ताकि पौधे लंबे सीधे और कम टहनियों वाले हों। खाद के लिए कम बीज डाला जा सकता है परंतु उसके लिए भी एक मन डालना ही उचित होगा ताकि पौधे पतले रहें और जल्दी सड़ जायं। दूरी अधिक रहने से पौधे मोटे हो जाते हैं और गाढ़ने पर जल्दी सड़ते नहीं।

बोने की रीति—इसके बीज छींटकर ही बोना अच्छा होता है। छींटने के पश्चात् दतारी से भूमि में मिला देना चाहिए। कहीं-कहीं इसे बोने के यंत्रों से कतारों में भी बोते हैं। कुछ स्थानों में एक बार कतारों में बीज बोकर उन कतारों को काटती हुई कतारों में और बीज बोते हैं। जहां भूमि में तरी कम हो वहां यंत्रों से कतारों में बोना उचित होगा वरना इस रीति के बोने में विशेष परिश्रम तथा व्यय करने की आवश्यकता नहीं है। बीज चाहे छींटकर बोये जायं या कतारों में। यह देखना उचित है कि उनमें अधिक-से-अधिक अंतर तीन इंच का हो।

बोने का समय—इसे वर्षारंभ के साथ ही बोना चाहिए। अधिकांश स्थानों में आषाढ़ (जून) में वर्षा के साथ-साथ बोया जाता है। जहां सिंचाई का प्रबंध हो वहां वर्षा के कुछ दिन पहले भी बो सकते हैं। बंबई प्रांत के कुछ भागों में जहां धान की खेती होती है वहां कार्तिक (नवंबर) में धान के खेतों में सन के बीज छींट दिये जाते हैं और जब पौधे बड़े हो जाते हैं तो सन के लिए फाल्गुन-चैत्र (मार्च) में जड़ सहित उखाड़ लेते हैं। बंगाल और आसाम में सितंबर से लेकर दिसंबर तक बोया जाता है और बीज आने पर काटते हैं मद्रास की तरफ खरीफ और रबी दोनों फसलों में हो सकता है।

निदाई और देखभाल—निदाई की आवश्यकता नहीं। देखभाल में इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि यदि हानिकर्ता कीट विशेष मात्रा में हो जाय और फसल नष्ट होती दीखे तो जल्दी गाढ़ देनी चाहिए। एक पतंग की जाति का कीट जिसका बालकीट पीले रंग का काले मुंह का इंच डेढ़ इंच लंबा रोएंवाला लग जाता है वह बहुत हानि करता है। ऐसे कीट को आगे दिये हुए उपचार द्वारा नष्ट कर देना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिंचाई—जहां यथोचित वर्षा का अभाव हो वहां करनी होगी।

कीट और व्याधियां—वैसे तो पतंग की जाति के दो-चार कीट और पत्तों में छेद कर देनेवाले छोटे कीट लग जाते हैं, परंतु निंदाई और देख-भाल के वर्णन में जिस कीट का वर्णन किया है वह विशेष हानि पहुंचाता है। उसके तरुण कीट पतंग को रोशनी पर आकर्षित करके नष्ट करना चाहिए। ताकि वह आगे वंश-वृद्धि न करें।

फसल की तैयारी और उपज—सन की फसल दो मुख्य कार्यों के लिए उपजाई जाती है। एक तो हरे खाद के लिए दूसरी सन (ताग) के लिए। हरे खाद के लिए जब उपजाई जाती है तो उसे सात-आठ सप्ताह की होने पर गाढ़ देना चाहिए। सबसे उत्तम समय वह होगा जब फूलों की कलियां आने लगें। इतना ध्यान और रखना चाहिए कि जहां वर्षा का अंत जल्दी होता हो वहां ऐसे समय में गाड़देनी चाहिए कि जिसमें गाड़ने के पश्चात् एक अच्छी वर्षा हो जाय।

गाड़ने की रीति—अधिकांश स्थानों में हल चला दिया जाता है जिसमें खड़ी फसल गिरकर दब जाती है। कहीं-कहीं पहले हल्की पठार (सुहागा) चलाकर फसल तोड़ देते हैं और फिर गाड़ते हैं। कुछ स्थानों में हसुओं से काटकर उसी खेत में या दूसरे खेतों में भी गाड़ते हैं।

सन के हरे खाद की उपज दो सौ से तीन सौ मन तक हो जाती है। ऐसे खाद में लगभग पचहत्तर से अस्सी शतांश तक जल रहता है और ०·४% से ०·५% तक ना० की मात्रा रहती है। इस हिसाब से देखा जाय तो और उपज दो सौ मन ही ली जाय तो इस खाद से लगभग तीस सेर से चालीस सेर ना० प्रति एकड़ पहुंच जाती है।

हरे खाद के लिए जो सन उपजाया जाय और उससे सन और खाद दोनों का काम लेना हो तो सन को तीन-चार सप्ताह तक और बढ़ने देना चाहिए और ऊपर की पत्तेवाली छोटी-छोटी टहनियां लगभग डेढ़ फुट लंबी काटकर खाद के काम में लाई जा सकती हैं। शेष भाग से सन प्राप्त किया जा सकता है। ऐसी क्रिया आर्थिक दृष्टि से वहां लाभप्रद होगी जहां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मजदूरी सस्ती हो और खेतों में खाद के सड़ने के लिए तरी काफी हो अथवा दूसरी फसल की सिंचाई का प्रवंध अच्छा हो।

तागवाली फसल—ऐसी फसल वोने के समय से चार पांच महीने में तैयार होती है। वहुत से कृषक फलों के पूर्ण पकने पर और सूख जाने पर फसल काटते हैं। कुछ लोग अधपके फल होते हैं उस वक्त काटना उत्तम समझते हैं। कहीं-कहीं जब फल वनने लगते हैं तव भी काट लेते हैं। पहली रीति से यह लाभ होता है कि वीज भी पूरे पके हुए मिल जाते हैं और पौधों के पत्ते पूरे झड़ जाते हैं जिनसे खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। दूसरी स्थिति पर पहुंचे हुए सन को काटा जाय तो सन के तंतु मुलायम और लंवे होते हैं अधिक टूटते नहीं। जो फसल फल बनने के समय में काटी जाती है उसका सन कमजोर होता है।

सन निकालना—इसके लिए कहीं-कहीं पौधे उखाड़ लिये जाते हैं और कहीं-कहीं जमीन की सतह के पास से काट लिये जाते हैं। उखाड़े पौधों से कुछ सन अधिक मिलता है, परंतु यह क्रिया भारी मिट्टी में ठीक नहीं होती। वहां तो जमीन की सतह के बरावर से ही काटना उत्तम होगा। काटे हुए पौधे का सन साफ और एक रंग का होगा। उखाड़े हुए का कुछ मैला होता है। सन के पौधे ज्यों-ज्यों काटे जाते हैं उनकी छः-सात इंच व्यास की पिंडियां वांधकर रखना चाहिए। वाद में पिंडियों के ऊपर वाले भाग को जिसमें फल लगे रहते हैं उसे पीटकर वीज निकाल लेने चाहिए अथवा यदि ऊपरी भाग अच्छा सूखा हुआ न हो तो उसे काट कर सुखा करके वीज छुड़ाने के लिए डंडे से पीटना पड़ता है। इसके लिए नदी, नाले, पोखर (तालाव) वेकार कुए या जहां ऐसी सुविधा न हो वहां हौज़ में जल भरकर डुबाते हैं। चूंकि पिंडियां न तैरकर पानी में डूबी रहें उनपर कुछ वजन भी रखना होता है। वहुधा पत्थर रख देते हैं। जो सन फलों के पूर्ण पकने पर काटा जाता है ऐसे सन की पिंडियां पहले दो-एक रोज पानी में खड़ी रखकर फिर टेढ़ी करके डुबोई जायं तो उत्तम होगा। ऐसा करने से पौधों के नीचे के भाग की छाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो अधिक चिपकी रहती है वह और ऊपर के भाग की छाल बराबर गल-कर एक साथ छूटने-जैसी हो जाती है, निकालते समय छाल की तन्तु टूटते नहीं और लंबे-लंबे निकलते हैं।

पिंडियों को गलाने के लिए बहते जल की अपेक्षा स्थायी लेकिन स्वच्छ जल उत्तम होता है। अधिक गंदे या कीचड़ वाले जल में डुबाने से सन का रंग खराब हो जाता है। सन को अधिकतर गर्मी के दिनों में जब कृषकों को कुछ अवकाश मिलता है उन दिनों में पौधों से छुड़ाते हैं उस समय तक पिंडियां रक्खी रहती हैं। इसमें एक लाभ यह होता हैं कि गर्मी के दिनों में तापमान अधिक होता है सो कम समय में ही सन पौधों से छूटने जैसा हो जाता है। साधारणतः गर्मी के तीन-चार दिन और सर्दी के दिनों में सात-आठ दिन तक डुबोना पड़ता है। कृषकों को चाहिए कि हर दूसरे दिन कुछ पौधे निकालकर सन छुड़ा करके देख लें। आवश्य-कता से कम डुबाकर रक्खा जाय तो सन आसानी से न छूटकर टूटेगा बहुत, और इसके विपरीत यदि अधिक दिनों तक डूबा रहा तो ताग कमजोर हो जायगा।

स्मरण रहे कि जहां के वातावरण में तरी अधिक रहती है वहां सन को काटकर अधिक दिनों तक नहीं रखना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से ताग कमजोर हो जाता है।

जब सन के पौधे इतने गल जाते हैं कि उनसे सन जल्दी छूट जाता है, तो पिंडियां पानी से बाहर निकालकर सन छुड़ाया जाता है। इसके लिए प्रत्येक पौधे को पकड़कर उसके नीचे का तीन-चार इंच का टुकड़ा तोड़ दिया जाता है। ऐसा करने से बीच का काष्ठ और सन के तंतु अलग-अलग हो जाते हैं। एक हाथ के अंगूठे और पहली उंगली से सन और दूसरी उंगलियों से काष्ठ को पकड़कर दूसरे हाथ की उंगलियां सन और काष्ठ के बीच में ऐसी चलाते हैं कि जिससे सन और काष्ठ अलग-अलग हो जाते हैं।

जहां बहता पानी मिलता है वहां ऐसा भी करते हैं कि पिंडियों को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पकड़कर पानी पर पीटते हैं। ऐसा करने से काष्ठ के टुकड़े होकर बह जाते हैं और सन हाथ में रह जाता है।

पहली रीति से छुड़ाने में काष्ठ समूचा निकलता है, जो टट्टे बनाने जलाने तथा अन्य किसी काम में आ जाता है। बहते पानी में पीटकर छुड़ाने से काष्ठ के छोटे टुकड़े होकर बह जाते हैं। जहां मजदूरी का अभाव हो और बहता पानी मिलता हो, तो वहां दूसरी रीति काम में लानी चाहिए, वरना पहिली रीति ही उत्तम होगी।

ताग को छुड़ाने के पश्चात् उसे पीटकर धोया जाता है ताकि वह साफ हो जाय। उसके बाद उसे बांस या रस्सी पर टांगकर या जमीन पर फैलाकर सुखाते हैं। फिर छोटे बंडल (गुछरियां) बनाकर रख लेते हैं। सन की उपज पांच-छः मन तक ली जा सकती है। वैसे अच्छे खेतों में सात-आठ मन तक की उपज उतर आती है। बीच का काष्ठ लगभग साठ-सत्तर मन तक हो जाता है।

वितरण और व्यवसाय—कृषक अपने घर के उपयोग के लिए ढेरों से कातकर सुतली और रस्सियां बनाते हैं। अपनी आवश्यकता के लिए रखकर शेष आपस में बेच लेते हैं या स्थानीय व्यवसायियों के हाथ बेच देते हैं। ऐसे व्यवसायी गांठ बनाकर कारखानों में भेज देते हैं, जहां पक्की गांठें प्रेस से बांध दी जाती हैं या सन का उपयोग किया जाता है।

सन का निर्यात बंबई, मद्रास और कलकत्ते से होता है। कलकत्ते से जो माल आता है उसे बनारसी, रायगढ़ी और बंगाली कहते हैं। बंबई और मद्रास से जानेवाले माल तथा अंतर-प्रांतीय व्यवसाय में जो व्यवसायिक नाम हैं निम्नलिखित हैं—देवगढ़ी, इटारसी, सिवनी, जबलपुरी, पीलीभीत, कोकोनेड़ा, वारंगल, गोदावरी इत्यादि।

सन का मूल्य उसकी चमक, उसके मुलायमपन तथा लंबाई पर निर्भर है।

उपयोग और गुण—हरे पौधे खाद के लिए काम में लाये जाते हैं। उन्हें पशुओं को खिलाते हैं। फूल से पकौड़ियाँ भी बनाई जाती हैं या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तरकारी भी बनाते हैं। बीज पशुग्रों को भी खिलाये जाते हैं जिससे दूध बढ़ता है ऐसा माना गया है। ताग से सुतली बनाई जाती है, जिससे चारपाइयां (खाट) बुनी जाती हैं। गाड़ियों के पांखरे (ग्राड़) बांधने के लिए भी सुतली का उपयोग किया जाता है। सुतली से रस्से बनाते हैं जो बड़े मजबूत होते हैं। पानी में सन के रस्से जल्दी सड़ते नहीं, इसलिए चरसे वगैरह में काम के होते हैं। सुतली से टाट-पट्टियां भी बनाई जाती हैं। सन से बोरे और टार-पोलिन का कपड़ा भी बनाते हैं। काष्ठ जिसे कहीं (बोये) कहते हैं, टट्टे बनाने तथा इंधन का काम देते हैं। जहां इंधन की कमी होती है वहां भी सन उपजाया जाता है, ताकि प्रारंभ में गन्ने का रस गरम करने के लिए काष्ठ काम में लाया जाय। बाद में तो गन्ने के रस-रहित टुकड़े सूख जाते हैं तो वे ही इंधन का काम दे देते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: ४ :

तंबाकू

Tobacco *Nicotiana tabacum, Nicotiana rustica*

तंबाकू का आगमन भारतवर्ष में पोर्चुगल निवासियों-द्वारा १६०५ में हुआ ऐसा अनुमान है और वर्तमान समय में इसकी खेती भारतवर्ष के सब प्रांतों में होती है, परंतु बंगाल, मद्रास, बंबई, बिहार, उत्तरप्रदेश तथा पंजाब में विशेष होती है।

थोड़े बहुत भेद-भावानुसार तंबाकू की कई जातियां मानी जा सकती हैं। परंतु वे सब दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं।[1] निकोटियाना टेबेकम और [2] निकोटियाना रस्टिका। क्षेत्रफल के हिसाब से देखा जाय तो एक—चतुर्थांश (२३.७%) भाग में रस्टिका और शेष (७६.३%) में टेबेकम की खेती होती है। उपज के विचार से अनुमान किया जाय तो एक तृतीयांश (३३%) उपज रस्टिका की और शेष (६७%) टेबेकम की खेती होती है। रस्टिका की खेती अधिकतर उत्तर-भारत में ही होती है।

रस्टिका का पौधा छोटा होता है। इसके पत्ते डंडी वाले मोटे और घने होते हैं। अंतिम भाग नोकीला न होकर गोल होता है। फूल पीले रंग के घने लगे हुए होते हैं। बीज टेबेकम के बीज से लंबे और बड़े होते हैं।

---

[1] Report on the marketing of Tobacco in India 1939-p 28.

[2] जहां पौधे के डंठल के साथ में पत्ता लगा हुआ होता है वहां कुछ डंडी छोड़कर पत्ते का फैलाव होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टेबेकम के पत्ते नोकीले बिना डंडी वाले होते हैं। इसका पौधा यदि स्वेच्छानुसार बढ़ने दिया जाय तो छः-सात फुट ऊंचा हो जाता है, परंतु अधिकांश भागों में सिर्फ वे ही पौधे बढ़ने दिये जाते हैं जिनसे बीज लेना होता है। शेष की बढ़ती हुई कोंपल तोड़ दी जाती है ताकि पत्ते बड़े और मोटे हों। इसका फूल लंबा और गुलाबी रंग का होता है। बीज गोल और बहुत छोटे-छोटे होते हैं।

तंबाकू के पत्ते साधारणतः जितने चौड़े होते हैं उससे दूने लंबे होते हैं। लंबाई ज़मीन, जलवायु और जाति के अनुसार फुट-डेढ़ फुट से लेकर अच्छी भूमि में इससे भी कुछ अधिक हो जाती है।

तंबाकू के व्यवसाय के वर्ग या नाम—ऐसे वर्ग अधिकतर तंबाकू की उपयोगितानुसार किये गये हैं, जैसे सिगरेट वाली, सिगार या चिरुट वाली, बीड़ी वाली, हुक्के द्वारा पीनेवाली, सूंघनेवाली इत्यादि। ये वर्ग बिलकुल सीमावद्ध नहीं हैं, क्योंकि सिगरेट या सिगार वाली हुक्के में भी काम आ सकती है। हुक्के वाली के पौधों से ऊपर के पांच-छः पत्तों से खानेवाली तंबाकू भी बनती है, उसी भांति सूंघनेवाली भी एकाध खास जाति को छोड़कर अन्य जाति की तंबाकू से बनाते हैं।

उपर्युक्त किसी भी वर्ग की तंबाकू हो, परंतु उसका मूल्य आंकने में पत्तों का रंग उनकी मुटाई, उनका आकार तथा उनकी तेजी[1] या हलके-पन पर विचार करना होता है।

रंग—तंबाकू में पत्तों का रंग सुंदर सुनहरी से लेकर गहरा भूरा यानी लाल-काला मिला हुआ-सा होता है। साधारणतः सुनहरी या पीले

---

[1] तंबाकू में निकोटीन Nicotine नाम का पदार्थ होता है जिसकी मात्रानुसार तंबाकू में हलकापन या तेजी होती है। यह मात्रा एक शतांश से लेकर सात-आठ शतांश तक होती है। रस्टिका जाति में तीन शतांश से आठ शतांश तक तथा टेबेकम में एक से पांच शतांश तक रहती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रंगवाली हलकी और गहरे रंगवाली तेज होती है। जो पत्ते ठीक से नहीं पक पाते उनका रंग कुछ हरा भी रह जाता है।

मोटाई—मोटे पत्तेवाली तंबाकू पतले पत्तेवाली की अपेक्षा तेज होती है। पत्तों में एक विशेष हद तक मोटाई भी होना जरूरी है। बहुत पतले पत्ते बीड़ी के लिए भले ही काम में आ जायं, परंतु सिगरेट में काम नहीं दे सकते क्योंकि वे अच्छे कटते नहीं।

पत्तों का आकार—चूंकि पत्तों का ही उपयोग होता है इसलिए साधारण मोटाईवाले अच्छे होते हैं। सिगार या चिरुट के लिए विशेषतः मुलायम और बड़े पत्तों की आवश्यकता होती है।

तेजी या हलकापन—बीड़ी-सिगरेट इत्यादि के लिए हलकी तंबाकू अच्छी होती है। हुक्का पीनेवालों के लिए तेज तंबाकू उत्तम होती है।

उपर्युक्त गुणों के सिवाय सिगरेट या सिगार की तंबाकू की जलने की शक्ति तथा राख का भी विचार किया जाता है। सिगरेट या सिगार एक बार जला दिया जाय तो उसे धीरे-धीरे जलता रहना चाहिए तथा उसकी राख सफेद होनी चाहिए। हुक्के के लिए चूंकि आग ऊपर जलती रहती है, तंबाकू के बराबर जलने या उसकी राख का विचार नहीं किया जाता।

सिगरेट वर्ग की तंबाकू—इसके लिए टेबेकम जाति की तंबाकू अच्छी होती है। जिसके उत्तम पत्ते सुनहरी रंग के होते हैं। वे साधारण मोटाई के होने चाहिए। हेरिसन स्पेशल (Harrison Special) नाम की तंबाकू बहुत अच्छी होती है। इसका पत्ता जो भट्टी में (Flue Curing) सुखाया जाता है, वह सुनहरी रंग का हो जाता है और वैसा ही बना रहता है। इसकी खेती मद्रास के गंटूर, कृष्णा तथा गोदावरी जिलों में विशेष रूप से होती है। इस जाति का प्रचार टोबेको डेवेलेपमेंट कंपनी द्वारा हुआ है, और बढ़िया सिगरेट के लिए इसका उपयोग होता है।

इसके सिवाय साधारण सिगरेट के लिए जो तंबाकू काम में आती है उनके नाम भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न हैं। गंटूर के आसपास का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाम थोकाकू, देसावली व दक्षिणार्थी आदि हैं। विहार में मोटे और गहरे रंगवाली को बोनरी और पीले रंगवाली को चूरिया कहते हैं।

सिगार वर्ग—सिगारवाली तंवाकू की खेती मद्रास तथा वंगाल की तरफ विशेष होती है। सिगार या चिरुट के लिए भूरे रंग के पत्ते अच्छे होते हैं। ऐसे पत्ते साधारण मोटाई के, मुलायम तथा विना उभरी हुई नसों के होने चाहिए, ताकि वे अच्छी तरह से लपेटे जा सकें और सुंदर दिखें। ऐसी तंवाकू के पत्ते डेढ़ फुट से दो फीट लंबे तथा आठ-नौं इंच चौड़े होते हैं। वंगाल में रंगपुर में होनेवाली तंबाकू के नाम पेंसिलवेनिया, सुमात्रा, वर्मीज हवाना और मद्रास में होनेवाली का नाम उसीकापल है।

बीड़ीवर्ग—बीड़ीवाली तंवाकू की खेती गुजरात की तरफ बहुत होती है। मान[1] महोदय ने पांच जाति की तंबाकू वतलाई है। गाडियों—जिसके पत्ते बड़े और मोटे होते हैं। यह तंवाकू बड़ी तेज़ होती है। पिलियो—इसका पत्ता पहली से कुछ छोटा होता है। कालियो—इसके पत्ते सबसे बड़े होते हैं। खारे पानी से ऐसी तंवाकू की उपज अच्छी होती है। इसका उपयोग हुक्के के लिए अच्छा होता है। मऊड़ियों—इसके पत्ते महुए के पत्ते के आकार के होते हैं। बीड़ी के लिए यह बहुत अच्छी मानी गयी है। शेंगियो—इसका पत्ता पतला और लंवा होता है।

वंवई के निपानी भाग में होनेवाली तंवाकू के नाम मिर्जी, निपानी, सांगली और जवारी है।

मैसूर में होनेवाली तंवाकू के भी कई नाम हैं। वह भी काफी तेज़ होती है।

बीड़ी के लिए पंढरपुरी नाम की तंवाकू रस्टिका जाति की भी काम में लाई जाती है। चूंकि यह तेज़ होती है, अतः दूसरी तंवाकू में तेजी लाने के लिए इसे मिला देते हैं।

---

[1] Departmant of Agriculture, Bombay Bull. N0. 122 by Man.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

J781
15257

गुजरातवाली बीड़ी की तंबाकू में तीन, निपानीवाली में चार, मैसूर-वाली में पांच तो पंढ़रपुरी में आठ शतांश तक भी निकोटीन पाया जाता है।

हुक्का और तंबाकू—टेवेकम जाति की तंबाकू जो आसाम में होती है उनके नाम हाथीकोनिया, पटुआ खोल, सकुनिया, थड़ा पात इत्यादि है। पंजाब में होनेवाली के नाम नौकीं (नौकीले पत्तेवाली) कड़क, घोडा गिडरी इत्यादि हैं।

रस्टिका जाति की तंबाकू जो हुक्के में काम आती है उनके नाम गोभी, पेशावरी, मोतीहारी और विलायती हैं।

कलकतिया की खेती पंजाब, दिल्ली और उत्तर प्रदेश में विशेष होती है। इसमें निकोटीन करीब पौने चार शतांश तक रहता है। गोभी की खेती पंजाब में होती है। कलकतिया से इसके पत्ते कुछ बड़े होते हैं। जो सीमा प्रांत में होती है उसे पेशावरी कहते हैं। यह कलकतिया से कुछ कड़ी होती है। इसमें निकोटीन सवा चार शतांश के लगभग होता है, बंगाल कलकतिया के पौधे मध्य श्रेणी की ऊंचाई के होते हैं। मोतीहारी के पौधे कलकतिया से कुछ ऊंचे होते हैं।

खाने और सूंघनेवाली तंबाकू—उत्तर भारत में तो टेवेकम जाति की कोई खास उपजाति ऐसी नहीं होती जो खाने के लिए ही उपजाई जाय। हुक्केवाली तंबाकू के ऊपर के पांच-छः पत्तों से खानेवाली तंबाकू बना लेते हैं। मद्रास में कोयम्बतूर के निकट दो-एक जातियां ऐसी हैं जो खाने के लिए अच्छी मानी गई हैं। सूंघनेवाली तंबाकू के लिए सभी पत्ते काम में लाये जा सकते हैं। इसके लिए तो तंबाकू की धूल (Dust) तक भी काम में लाते हैं।

रस्टिका जाति में सीमाप्रांत में नसवारी तंबाकू सूंघने के लिए अच्छी मानी गई है।

1821

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सिगरेट और सिगारवाली तंबाकू गुंटूर (मद्रास), चिरुटवाली रंगपुर (बंगाल) बीड़ीवाली गुजरात, बेलगांव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय

ग्रौर सतारा (वंबई) हुक्का तंत्राकू लुधियाना, जालंधर (पंजाव) फर्रुखावाद, मेरठ, (उत्तर प्रदेश) दरभंगा, मुजफ्फरपुर (बिहार) ग्रौर उत्तर बंगाल खानेवाली कोयम्बतूर (मद्रास) ग्रौर मैसूर की ग्रच्छी होती है। सूंघनेवाली भी मद्रास में जो एक खास रीति से तैयार की जाती है ग्रच्छी होती है। उत्तर भारत में हुक्केवाली तंवाकू के ऊपरी पत्तों से ही लखनऊ ग्रौर वनारस के विख्यात जर्दे वनाते हैं।

जलवायु—तंवाकू की वाढ़ के समय उष्ण ग्रौर तर वातावरण उत्तम होता है परंतु पकते समय सूखा ग्रौर ठंडा होना चाहिए। इसे पाले से वहुत जल्दी हानि पहुंचती है चूंकि इसके पत्ते वड़े ग्रौर चौड़े होते हैं। इसे ग्रोलों से भी वहुत हानि पहुंचती है। जहां सर्दी के दिनों में धूल वहुत उड़ती है वहां तंवाकू के पत्तों पर धूल ग्रौर रेती वहुत जम जाती है ग्रौर वह ऐसी चिपक जाती है कि पत्तों से जल्दी छूटती नहीं। इसलिए तंवाकू ऐसे स्थानों में वोना चाहिए जहां हवा से कुछ वचाव हो।

भूमि व जुताई—तंवाकू के लिए भारी की ग्रपेक्षा हलकी मिट्टी ग्रच्छी होती है। सवसे ग्रच्छी वलुग्रा-दुमट होगी। गांवों के निकटवाली मिट्टी दूर की मिट्टी की ग्रपेक्षा ग्रच्छी होती है। क्योंकि ऐसी मिट्टी में ग्रामों का कूड़ा-कर्कट ग्रौर राख पहुंच जाती है। जहां पैखाने नहीं होते वहां मैले का खाद भी पहुंच जाता है।

तंवाकू के लिए जुताई काफी ग्रच्छी करनी पड़ती है। चूंकि इसके पौधे रोपे जाते हैं, जुताई के लिए समय काफी मिल जाता है। कम-से-कम दो वार हल ग्रौर दो-तीन वार वखर चलाना होगा।

खाद ग्रौर हेरफेर

तंवाकू में खाद्य पदार्थ—

	ना०	फा० पे०	पो० ग्रा०	चूना
सूखे पत्तों में	२·६२	०·६३	१·३८	३·६६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तंबाकू की उपज-गणना समस्त भारत की लगभग १०.४ मन प्रति एकड़ पड़ती है। इस हिसाब से गणना की जाय तो ना० की मात्रा लगभग बारह सेर हुई। तंबाकू के लिए पो० के खाद का महत्व बहुत है। जिस भूमि में पो० काफी मात्रा में होता है उसकी तंबाकू उत्तम होती है। ऐसी तंबाकू की राख सफेद होती है इसलिए यहांपर पो० की गणना भी कर लेनी चाहिए। इसकी मात्रा प्रति एकड़ साढ़े पांच सेर पड़ती है। जिस प्रकार फा० पे० की मात्रा फसल में पाई जानेवाली से लगभग तीन गुनी डालनी होती है उसी भांति पो० ग्रा० की भी कम-से-कम तीन गुनी डालनी चाहिए।

गोबर के खाद के रूप में ना० की दुगनी मात्रा पहुंचाने के लिए हमें १२० मन खाद देना होगा। इससे अधिक खाद देने से उपज तो अधिक होती है परंतु तंबाकू अच्छी नहीं होती।

तंबाकू की उपज में पत्तों की उपज के सिवाय पौधों के डंठल भी होते हैं। इनकी उपज पौधों की उपज का तीसरे से पांचवां भाग हो जाता है। सिर्फ पंजाब में पत्ते डंठल की उपज बराबर होती है[1]। हुक्का की तंबाकू में इन्हें भी कूटकर मिला देते हैं।

तंबाकू के डंठल में ना० की मात्रा कुछ ही कम रहती है। लगभग २% ली जा सकती है। इस हिसाब से तीन मन डंठली की उपज मानी जाय तो ना० की मात्रा २·४ सेर होगी जिसके लिए चौबीस मन खाद और देना होगा। इस हिसाब से कुल १४४ मन हुआ।

उपर्युक्त उपज समस्त भारत की औसत उपज है परंतु कहीं-कहीं इससे ड्योढ़ी दुगनी उपज भी होती है जैसे उत्तर प्रदेश में औसत उपज १६·६ मन पड़ती है सो ऐसे स्थानों में खाद की मात्रा ड्योढ़ी कर लेनी चाहिए। इसी ड्योढ़ी उपज के लिए गिना जाय तो २१६ मन खाद हुआ।

इस सूत्रात्मक मात्रा की तुलना क्रियात्मक प्रयोगों से की जाय तो

---

[1] व्यावसायिक रिपोर्ट पृष्ठ २०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगभग यही मात्रा आती है ।

डथी और फूलर महोदय उत्तर प्रदेश के लिए, जहां तंवाकू की उपज करीव १५ मन से भी अधिक होती है, दोसौ मन खाद आवश्यक बतलाते हैं ।

सालीमाथ[1] महोदय दक्षिण वंवई के लिए दस-पंद्रह गाड़ी खाद उचित बतलाते हैं जो लगभग सौ-डेढसौ मन होता है । इसके अभाव में २०० भेड़ें आठ दिन तक प्रति एकड़ विठलाना काफी होगा । उपज का अनुमान पांच मन से नौ मन तक का है ।

कृत्रिम खाद में कुछ गोबर के खाद के साथ लगभग ३॥ मन सोडियम नाइट्रेट, १·४ मन सुपरफासफेट और १·८ मन पोटेशियम सलफेट देकर देखा गया तो आर्थिक दृष्टि से सतारा और बेलगांव दोनों जगह के खाद लाभप्रद सिद्ध नहीं हुए ।

वैद्यनाथ महोदय ने नड़ियाद (गुजरात) के प्रयोगों का नतीजा अपनी रिपोर्ट में दिखाया है । उससे ज्ञात होता है कि तंबाकू के लिए खलियों का खाद भी अच्छा होता है । गोबर के खाद के रूप में ५० सेर ना० देने से तंबाकू की लगभग १६ मन उपज आई । गोबर के साथ-साथ बाईस सेर ना० एरंडी की खली के रूप में और पंद्रह-पंद्रह सेर बिनौला कुसूम और मूंगफली की खली के रूप में दी गई तो उपज ३६, २२, ३२ और २७ शतांश वढ़ी । उपज का औसत तीन साल का था ।

सिगरेटवाली तंबाकू के लिए कार्वनिक खाद देने से पत्तों का रंग उत्तम नहीं आता । इसलिए उसके लिए १० सेर ना०, २५ सेर फा०पे० और ५० सेर पो० आ० पहुंचे ऐसे कृत्रिम खाद देना उत्तम होगा । यदि दलहन की फसल पहले ली हो तो ना० का खाद न दिया जाय यही अच्छा है । पोटाश पोटेशियम सलफेट के रूप में और फा० पे० सुपर फासफेट के रूप

---

[1] Salimath S. S. 1927. Bul. NO 140 Dept Agri. Bombay

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में देना चाहिए।

हेर-फेर—जहां खेतों में तंबाकू उपजाया जाता है वहां तो साल भर में एक ही फसल ली जाती है परंतु जहां सिंचाई का अच्छा प्रबंध हो वहां ग्रीष्म ऋतु में तंबाकू उपजाई जाती है ऐसे स्थानों में बरसात में मक्का, उसके बाद आलू और ग्रीष्म ऋतु (फरवरी-मार्च से मई तक) में तंबाकू ले लेते हैं परंतु इसके लिए खाद भी काफी देना होता है और परिश्रम भी बहुत करना होता है। जहां दो फसल लेना हो वहां दाल वर्ग की फसल के बाद ली जाय तो उत्तम होगा। इसके लिए जल्दी पकने वाली मूंगफली की फसल अच्छी होगी। वैसे मक्का के बाद भी लगा सकते हैं। जहां साल भर में एक ही फसल लेना है वहां तंबाकूवाले साल से पहले और पिछले साल में कोई भी फसल ली जा सकती है।

बीज और बोआई

बीज की प्राप्ति—बहुधा कृषक अपने ही बीज रखते हैं। जिनके पास न हों उन्हें प्रांतीय कृषि-विभाग से परामर्श करके बीज मंगवाना चाहिए। सिगरेटवाली तंबाकू का प्रचार विशेष हो रहा है। मद्रास में, हेरिसन स्पेशल नं० ६ अच्छी मानी गई है। गुजरात में गाडियों नं० ६ और पीलियो नं० ४५ और नं० २४ की अच्छी उपज देती है। तंबाकू की व्यावसायिक रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि बोनेनज़ा (Bonanza) और गोल्ड डालर (Gold dollar) अमेरिकन जातियां जो अमेरिका में अच्छी सिद्ध हुई हैं उन्हें यहां लगाकर देखना चाहिए। गुंटूर में इनके कुछ प्रयोग हुए भी हैं। संभवतः हेरिसन स्पेशल को, जिसने यहां की जलवायु को अपना लिया है, वह न दबा सकी है।

तंबाकू के बीज नर्सरी में गिराना होते हैं। जहां क्षेत्रफल कम होता है वहां देवदारु के बक्सों में मिट्टी भर के उनमें भी बीज गिराते हैं। एक एकड़ के लिए आधी छटांक बीज काफी होते हैं। इन्हें महीन बालू में मिलाकर नर्सरी में छींटना चाहिए। एक एकड़ के लिए पांच फुट चौड़ी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और तीस फुट लंबी नर्सरी काफी होगी क्योंकि उसमें पौधे कम लगते हैं। नर्सरी की मिट्टी में गोबर का खाद इतना दे देना चाहिए जिसमें करीव एक इंच मोटा तह हो जाय। लकड़ी की राख भी उपर्युक्त नर्सरी में दस-बारह सेर के लगभग मिला देनी चाहिए। दोनों खाद अच्छी तरह मिलाने के पश्चात् नर्सरी की मिट्टी आसपास की जमीन से पांच-छः इंच ऊंची हो जाय ऐसी वना देनी चाहिए। बीज छींटकर मिला देने के पश्चात् उसमें झांझ मे पानी छींटना चाहिए और नित्य झांझ से ही पानी देना चाहिए। आवश्यकता पड़े वहां नर्सरी पर टट्टों की छाया भी कर देनी चाहिए। टट्टे संध्या को हटा लेने चाहिए।

नर्सरी में बीज गिराने का समय—अधिकांश स्थानों में तंबाकू के बीज गिराने का समय श्रावरण-भाद्रपद है परंतु कहीं-कहीं जून में भी गिरा देते हैं तो कहीं-कहीं अगस्त से सितंबर तक भी गिराते हैं। कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहां अप्रैल-मई में भी गिराते हैं। बीज गिराने में तंबाकू के बीज भाद्रपद-आश्विन (अगस्त-सितंवर) में गिराते हैं तथा उत्तरप्रदेश के सहारनपुर और झांसी के जिलों में वैशाख-ज्येष्ठ में नर्सरी में बोते हैं। सिगारवाली तंबाकू, जो दक्षिरण भारत में और बंगाल के रंगपुर जिले में होती है, के बीज श्रावण से आश्विन (जुलाई से सितंवर) तक गिराये जाते हैं। बीड़ीवाली तंबाकू का समय प्राय: सब स्थानों में सिगारवाली तंबाकू जैसा ही है लेकिन हुक्केवाली से कुछ विशेष अंतर है। पंजाव में बीज कार्तिक अगहन (नवंबर-दिसंवर) में गिराते हैं। उत्तरप्रदेश के अन्य स्थानों में बरसात के बाद ही बीज नर्सरी में बोये जाते हैं परंतु फर्रुखा-बाद में दो प्रकार की तंबाकू होती है। एक माहू और दूसरी वैसाखु। पहली के भाद्रपद से मार्गशीर्ष (अगस्त से नवंबर) तक तो दूसरी के पौष-माघ (जनवरी-फरवरी) में बोते हैं। खाने तथा सूंघनेवाली तंबाकू के बोने का समय भाद्रपद से कार्तिक तक है। बोने के बाद जबतक बीज अंकुरित नहीं होते केले के पत्ते या चटाई से ढककर रखना चाहिए।

तवाकू के पौधे छः-सात सप्ताह में रापने योग्य हो जाते हैं। करीब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चार-पांच इंच ऊंचे हो जायं अथवा चार-चार पत्ते आ जायं तब रोपना चाहिए।

रोपने की रीति—रस्टिका जाति की तंबाकू, जिसके पौधे छोटे और कुछ कम फैलनेवाले होते हैं, उन्हे डेढ़ फुट से दो फुट की दूरी पर रोपना चाहिए। टेबेकम जाति के बीज में हुक्केवाली तंबाकू के लिए कतारों में तीन फुट का और पौधों में ढाई फुट का अंतर उत्तम होगा। सिगरेटवाली तंबाकू के लिए ऐसा अंतर ढाई और दो फुट का रखना चाहिए।

निंदाई और देखभाल—पहली निंदाई तो नर्सरी में करनी होती है। जहां अन्य जाति के पौधों के सिवाय तंबाकू के घने पौधे हों तो उन्हें भी कुछ छांट देना चाहिए ताकि उनमें करीब एक इंच का अंतर हो जाय। खेतों में रोपने के बाद इन्हें टिड्डों से बचाना होता है, सो यदि क्षेत्रफल कम हो तो उनपर मिट्टी के छोटे नल रख देते हैं। जहां क्षेत्रफल अधिक हो वहां तो जिन पौधों को कीट नष्ट कर दे वहां दूसरे ही रोपना होगा। खेतों में निंदाई के लिए घास-पात निकालते रहना चाहिए। तंबाकू में ठोकरा नाम का एक सफेद घातक पौधा होता है। वह तंबाकू के पौधों की जड़ों से अपना पोषण करता है। उसे निकालने का खूब ध्यान रखना चाहिए।

तंबाकू के पौधों में बढ़ती हुई कोंपल (फुनसी) और जो पत्तों के बीच में से नई शाखाएं निकलें उन्हें तोड़ना ऐसी दो क्रियाएं और होती हैं। जब दस-बारह पत्ते आ जाते हैं तो बढ़ती हुई कोंपलें तोड़ दी जाती हैं। कहीं कोंपल तोड़ने के पश्चात् पौधों में बांस का सूआ भोंकते हैं ताकि ऊपर की बाढ़ बंद हो जाय। ऐसा करने से जो पत्ते रह जाते हैं, उनकी बाढ़ अच्छी होती है। ऐसी क्रिया हुक्के और खानेवाली तंबाकू के साथ अवश्य होनी चाहिए। सिगरेटवाली तंबाकू के साथ भी उस स्थिति में ऐसी क्रिया से लाभ होगा, जहां पत्ते छोटे-छोटे और पतले आते हैं ऐसी तंबाकू में पंद्रह-सोलह पत्ते छोड़कर कोंपलें तोड़नी चाहिए। जहां पत्ते पहले ही मोटे और बड़े-बड़े हों तो वहां कोंपल नहीं तोड़ना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहिए। ऐसी जगह में नीचे के कुछ पत्ते छोड़ कर ऊपर के पत्ते सिगरेट ग्रौर सिगार के काम ग्रायेंगे।

जिन पौधों से बीज लेना होता है उनकी कोंपल नहीं तोड़ी जातीं। पत्तों के घड़ के साथ मेल की जगह से जो नये कोंपल या शाखाएं निकलती हैं उन्हें ग्रवश्य तोड़ना चाहिए। उनके रखने से कोई लाभ नहीं होता। उत्तरप्रदेश में पत्ते काट लेने के बाद पौधों के ठूंठ से जो नये कोंपल निकलते हैं उनसे कहीं-कहीं दूसरी फसल भी ले लेते हैं।

सिंचाई—तंबाकू बिना सिंचाई के भी होता है परंतु जहां वर्षा कम होती है वहां ग्रवश्य सींचना होगा। जहां सींचना होता है वहां ग्रावश्यकतानुसार पानी देना चाहिए। साधारणतः प्रति दो सप्ताह बाद पानी दिया जाता है। तंबाकू के लिए नहर की ग्रपेक्षा कुएं का जल विशेष लाभप्रद होता है। सीमाप्रांत में नहर के जल से जितनी उपज होती है कुएं के जल से ड्योढ़ी हो जाती है।

तंबाकू के शत्रु—जब पौधे रोपे जाते हैं तो छोटे-छोटे टिड्डे उन्हें काट देते हैं। इनसे बचने के लिए निंदाई शीर्षक के ग्रंतर्गत दिये हुए उपचार करने होंगे। दो-एक पतंग के वालकीट (Greasy Surface Caterpillar) ग्रौर (Tobacco Caterpillar) नाम के कीट पत्ते खा जाते हैं। पहला पूर्ण वाढ़ पाया हुग्रा वालकीट काला डेढ़ दो इंच लंबा होता है। दूसरे का वालकीट मखमल जैसा मुलायम इंच-डेढ़ इंच लंबा होता है। ये कीट दूसरी जाति के पौधों से भी ग्रपना पोषण करते हैं। इसलिए तंबाकू पर विशेष नहीं पाये जाते। यदि ग्रधिक दिखें तो उन्हें हाथ से चुनवा डालना चाहिए। एक जाति का कीट तंबाकू के पौधे की जड़ भी काट देता है। जड़ काटनेवाला वालकीट मुर्झाए पौधे के निकट भूमि में मिल जाता है। उसे चुनवाकर नष्ट कर देना चाहिए नहीं तो रात को जाकर दूसरे पौधे काट देगा।

सूक्ष्म जंतुवाली व्याधियां—Bacterial wilt—एक प्रकार के वेक्ट्रिया पौधों के घड़ ग्रौर जड़ में लग जाते हैं जिससे पौधे पीले पड़ कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुर्झा जाते हैं। व्याधि न होने पाये इसलिए अच्छे स्वच्छ पौधे रोपना चाहिए।

मिलड्यू (Mildew) यह फंगसवाली व्याधि होती है। इससे पत्तों पर सफेद धब्बे से हो जाते हैं और अधिक होने से पत्ते मुड़कर मुर्झा जाते हैं। इससे बचाने के लिए पौधे इस रीति से लगाने चाहिए जिससे वे घने न हों और उनमें शुद्ध हवा लगती रहे।

पत्तों में भूरे धब्बेवाली (Leaf spot) नाम की एक और व्याधि हो जाती है उससे बचाने के लिए भी पौधों को घने नहीं बोना चाहिए।

मेजेक (Mosaic) नाम की व्याधि भी तंबाकू में लग जाती है। यह व्याधि जब लग जाती है तो पत्तों में जगह-जगह हरे रंग की जगह हलके पीले रंग के धब्बे से नजर आते हैं। जब व्याधि अधिक बढ़ जाती है तो ऐसे भाग सफेद भी हो जाते हैं। इसका अभी तक कोई इलाज नहीं निकला है। यह व्याधि एक प्रकार के कीट द्वारा फैलाई जाती है। वह कीट जब व्याधिग्रस्त पौधों का रस चूसकर दूसरे पौधों पर बैठ जाता है तो उनसे व्याधि लग जाती है। ऐसे कीट से पौधों को बचाना चाहिए।

फसल की तैयारी और उपज—तंबाकू साधारणतः रोपने के समय से जाति-अनुसार चौथे और पांचवे महीने में तैयार हो जाती है। 'टैबेकम' की अपेक्षा 'रस्टिका' जाति की तंबाकू कुछ दिन पहले तैयार होती है। कहीं-कहीं तीसरे महीने में भी पत्ते तोड़ने योग्य हो जाते हैं।

तंबाकू के पत्तों में जब हलका-सा पीला रंग और कहीं-कहीं भूरे धब्बे से नजर आयें तब पत्ते काटने योग्य होते हैं। कुछ तंबाकुओं में तो पत्तों के किनारे और उनकी नोंक नीचे की ओर मुड़ जाती है। सब पत्ते एक साथ तैयार नहीं होते। ज्यों-ज्यों पत्ते तैयार होते जाते हैं तोड़ते जाते हैं और कहीं-कहीं एक ही साथ काटे जाते हैं। ऐसी स्थिति में पौधे कब काटे जायं इसके लिए अनुभव की आवश्यकता है। अनुभवी लोग पत्तों को हाथ से छूकर भी उनकी तैयारी जान लेते हैं। पत्ते जब ठीक स्थिति पर नहीं काटे जाते और सुखाकर तैयार किये जाते हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तब बिगड़ जाते हैं।

तंबाकू के पत्ते या पौधे तेज हंसुए से काटे जाते हैं। जहां पौधे काटे जाते हैं वहां खेतों में तीन-चार इंच खूंटियां छोड़कर काटते हैं और कहीं-कहीं दो-एक इंच मिट्टी हटाकर भी काटते हैं। जहां ऊपर का बढ़ता हुआ कोंपल तोड़ा जाता है और पत्ते घने और मोटे हो जाते हैं वहां तो मिट्टी हटाकर काटना उचित होगा अन्यथा तीन-चार इंच खूंटी छोड़कर काटना चाहिए। जहांपर खूंटियों से फटी हुई दोंजी यानी दूसरी फसल ली जाती है वहांपर भी तीन-चार इंच खूंटियां छोड़कर ही काटना चाहिए। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सब पौधे एक साथ काटने योग्य नहीं होते तो जो तैयार हो जाते हैं उन्हें काट लेते हैं। जो पौधे बीज के लिए रखे जाते हैं उनके फल जबतक पूरे नहीं पक जाते वे खेतों में छोड़ दिये जाते हैं।

काटने के पश्चात् तंबाकू के पत्तों को खास रीति से सुखाना और तैयार करना पड़ता है और कृषकों की चतुराई उसीमें जांची जाती है। अनुभवी कृषक ही उत्तम माल तैयार कर सकते हैं। ऐसी तैयारी का उद्देश्य यह होता है कि पत्तों से सौरभ या सुगंध (Aroma) आवश्यकतानुसार आ जाय और उनका पानी उड़ जाय।

जिस तंबाकू से सिगरेट या सिगार बनाते हैं उसके पत्ते तो ज्यों-ज्यों तैयार होते जायं काट लेने चाहिए। खाने और बीड़ी या हुक्के द्वारा पीने तथा सूंघनेवाली तंबाकू के लिए पौधे ही काटना उत्तम होगा। जब अधिकांश पत्त पक जायं तब काटना चाहिए।

पत्तों के तैयार करने की रीतियों में स्थानीय अंतर कुछ-कुछ है परंतु हम उन्हें चार भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) भट्टियों में सुखाना (Flue curing)

(२) रस्सी या बांस पर पौधे या पत्ते लटकाकर सुखाना (Rack curing)

(३) जमीन पर सुखाकर ढेरों में तैयार करना (Ground and heap curing)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(४) गढ़ों में तैयार करना (Pit curing)

भट्टी द्वारा पत्ते सुखाना (Flue curing)—इसके द्वारा खास कर सिगरेटवाली तंबाकू तैयार की जाती है, परंतु व्यवसायिक रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि सिर्फ दो-शतांश तंवाकू ही इस रीति से तैयार की जाती है। इसके लिए एक खास रीति से कमरा तैयार किया जाता है जिसमें लोहे के नलों द्वारा जलती हुई भट्टी से हवा पहुंचाई जाती है। पत्ते उस घर में एक निर्धारित समय तक निर्धारित तापमान में सुखाए जाते हैं। ऐसे पत्ते बांस की छड़ों पर लटकाये जाते हैं। भट्टी में सुखाने से पत्तों पर सुंदर सुनहरी रंग ग्रा जाता है ग्रौर पत्ते सूख भी जाते हैं। पत्तों पर रंग लाने के लिए ८५°फे० से १००°फे० का तापमान तीस-चालीस घंटे तक रखना होता है। लाया हुग्रा रंग वना रहे इस के लिए सोलह से चौबीस घंटे तक १००° फे० से १२०° फे० तक रखना होता है। उसके वाद पत्तों के बीच की नस सुखाने के लिए १६५° फे० तक भी तापमान वढ़ाना पड़ता है। वाद में भट्टी की ग्राग वुझा दी जाती है ग्रौर कमरे के हवादान कमरा ठंडा करने के लिए खोल दिये जाते हैं। चूंकि सूखे हुए पत्तों में कुछ नमी ग्राजाय ग्रौर वे टूटे नहीं, इसलिए कमरे की फर्श पर उसे ठंडा करते समय कुछ पानी छींट देते हैं। १५'×१६'×१८' कमरे से करीव पंद्रह एकड़ की तंवाकू तैयार की जा सकती है। तैयार पत्तों में १८ शतांश से ग्रधिक पानी नहीं होना चाहिए।

जहां भट्टी का प्रवंध नहीं होता वहां सिगरेट या सिगारवाली तंबाकू को नीचे लिखी रीतियों से भी रस्सी या वांस पर लटकाकर पत्ते सुखाते हैं।

इसमें तंवाकू के पत्ते सुतली से वांधकर या पौधे हुए तो वैसे ही वांस या रस्सी पर लटकाकर सुखाते हैं। मद्रास में ऐसी रीति से सुखाने के लिए महीना-डेढ़ महीना तक पत्ते लटके रहते हैं। वाद में उन्हें इकट्ठे कर वंडल वना लेते हैं। कहीं-कहीं ग्रच्छा सुनहरी रंग लाने के लिए पत्ते वार-वार खोले जाते हैं ग्रौर फिर दबाकर रखे जाते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वंगाल में पांच-छः पत्ते इकट्ठे वांधकर पांच-छः दिन तक धूप में सुखाते हैं। इसके वाद उन्हें खोलकर उलट-पलट करके फिर वांधकर दो-तीन दिन के लिए धूप में ही सुखाते हैं। इसके वाद एक ही माह तक छाया में लटकाकर सुखाते हैं।

वंबई में भी पांच-छः पत्तों को वांधकर लंवी रस्सियों पर ही दस-बारह दिन तक सुखाते हैं।

जमीन पर सुखाना—भारत के अधिकांश भागों में तंवाकू जमीन पर सुखाई जाती है परंतु ऐसी तंवाकू का रंग सुनहरी न रहकर गहरा भूरा-सा हो जाता है, इससे सिगरेट के काम नहीं आंती। बीड़ी-हुक्के द्वारा पीने-खाने या सूंघने की तंवाकू के काम की रहती है।

कहीं-कहीं ऐसी तंवाकू के पौधे काटकर खेतों में ही पांच-सात दिन तक सुखाते हैं। प्रतिदिन सुवह पत्ते फैला दिये जाते हैं और संध्या को इकट्ठे करके ढेरी लगा देते हैं। जवतक पत्ते सूख नहीं जाते यह क्रिया की जाती है। वहुधा ऐसा भी होता है कि यदि खेत दूर हो तो खलिहान में या गांव के निकट मैदान में लाकर पौधे उपर्युक्त रीति से सुखाते हैं।

बंवई में, जहां बीड़ी की तंबाकू होती हैं, पत्तों के सूखने पर उनके बीच की नस (Mid rib) से छुड़ाकर कुछ और सुखाकरके चूरा कर डालते हैं। पत्तों के बीच की नस के भी पत्ते-जैसे टुकड़े करके उनमें मिला देते हैं।

तैयार तंवाकू को चलनियों से चालकर बीड़ी जैसी को बीड़ी के लिए और वहुत महीने चूरे को सूंघने की तंवाकू वनाने के काम में लाते हैं। हुक्के से पीने के लिए जो तंवाकू वनाई जाती है उसमें भी ऐसे चूरे को मिला देते हैं। बीड़ी का चूरा वनाते समय यदि पत्ते ऐसे सूखे हुए हों जिससे महीन चूरा अधिक हो जाय तो पत्तों पर थोड़ा पानी छींटकर उनमें नमी ले आते हैं।

जूड़ी तंवाकू—इसके लिए पत्तों को फैलाकर एक-दूसरे पर जमाते हैं। ऊपर-नीचे के पत्ते वड़े-वड़े होते हैं और वीच में छोटे-छोटे होते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसी जूड़ियों में पच्चीस-तीस पत्ते होते हैं। जूड़ियां पतली केले के घड़ के रेशों से या सुतली से वांधी जाती हैं। जूड़ियों को फिर ढेरी में रखकर (Fermented) पकाई जाती है। ढेरी में अधिक गर्मी न आजाय और तंवाकू बिगड़ने न पाये, इसलिए कभी-कभी खोलकर जूड़ियों में हवा लगा देते हैं। ऐसी क्रिया उस समय तक वार-वार की जाती है, जवतक कि तंवाकू में चाहिए वैसी सुगंध नहीं आ जाती।

विहार में पौधों को सुवह फैलाकर संध्या को ढेरी वनाकर रख देते हैं। जव तंवाकू काफी सूख जाती है तो पत्ते तोड़े जाते हैं। ऊपर के पांच-छः पत्ते, जिन्हें मुड़हन कहते हैं, से खाने की तंवाकू वनाते हैं। नीचे के चार-पांच पत्तों से हुक्के में पीने की तंवाकू वनती है। आठ-आठ दस-दस पत्ते इकट्ठे वांधे जाते हैं। वांधने के लिए खजूर के पत्ते और केले के घड़का रेशा काम में लाया जाता है। छोटे-छोटे वंडल खजूर के पत्ते और बड़े केले के घड़ के रेशे से वांधे जाते हैं। जैसे जूड़ीवाली तंवाकू ढेरी में तैयार की जाती है वैसे इन पत्तों को भी करते हैं। आवश्यकता-नुसार तीन-चार या पांच-सात दिन पीछे ढेरी को खोलकर पत्तों में हवा लगाते हैं। कृषक ढेरी में हाथ डालकर देख लेते हैं कि गर्मी कितनी है। जव-जव गर्मी अधिक मालूम पड़ती है ढेरी खोल देते हैं। ऐसी क्रिया लगभग एक महीने तक करनी होती है।

अन्य राज्यों में भी करीव-करीव ऐसी रीति से खाने सूंघने और हुक्के द्वारा पीने की तंवाकू तैयार की जाती है। कहीं-कहीं ढेरी को या छोटी-छोटी ढेरियों को कड़वी (Jowar stalks) या कंवलों से दवाकर गर्मी लाते हैं और आवश्यकता होने से पानी भी कुछ छिड़का जाता है।

गढ़े तैयार करना—पंजाव में आवश्यकतानुसार गढ़े खोदकर उनके चारों ओर कड़वी की तह लगा देते हैं और मुर्झाए हुए पौधे उसमें रखकर उन्हें कड़वी से ढक देते हैं। कहीं-कहीं तंवाकू के पौधे गढ़े में रखने के पहले गड्ढों में एक-दो तह आक के पत्ते के विछा देते हैं। ऐसा समझा जाता है कि इन पत्तों से तंवाकू में तेजी आ जाती है। छः-सात दिन वाद पौधे निकाल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर उन्हें रस्से-जैसा बटकर बंडल बना लेते हैं।

बंबई में भी ढाई फुट से तीन फुट गहरे गड्ढों में कड़वी में दबाकर पौधे तैयार किये जाते हैं। चार-पांच दिन बाद पौधे निकालकर पत्ते तोड़ दिये जाते हैं। गढ़ों में तंबाकू को दबाकर रखने के लिए ऊपर की कड़वी की तह पर मिट्टी के ढेले भी रखते हैं।

मद्रास में गढ़े करीब ६ फुट गहरे होते हैं। वहां गढ़ेवाली तंबाकू दस-बारह दिन में तैयार हो जाती है।

गढ़ों में तंबाकू तैयार जल्दी तो होती है परंतु तापमान का अंदाज नहीं रहता। इससे कभी-कभी बिगड़ जाती है। इसलिए ढेरी में माल तैयार करना उत्तम होगा।

उपज—तंबाकू की उपज पर भूमि के सिवाय जलवायु, सिंचाई तथा जाति का बहुत असर पड़ता है। चूंकि इसके पत्ते बड़े-बड़े होते हैं, जोर की हवा से फट जाते हैं और यदि ओले गिर जायं तो फसल बिल्कुल ही बिगड़ जाती है। तंबाकू की जाति में देखा जाय तो सबसे अधिक उपज हुक्का तंबाकू की होती है। उसके बाद बीड़ी और सिगरेटवाली की होती है। उत्तरप्रदेश में हुक्का-तंबाकू की उपज बीड़ी व सिगरेटवाली से लगभग तीन गुनी हो जाती हैं। जहां सिगरेटवाली की सात-आठ मन उपज होती है तो हुक्केवाली की चौबीस-पच्चीस मन से भी अधिक हो जाती है। समस्त भारत की औसत उपज १०·४ मन तक की जा सकती है।

जहां पौधे ही काटे जाते हैं वहां तंबाकू की उपज में पत्तों के साथ डंठलों की भी उपज होती है। पौधे और डंठलों की निष्पत्ति[1] करीब-करीब निम्नलिखित होती है।

पंजाब में आधा भाग, उत्तर प्रदेश, सीमाप्रांत और हैदराबाद में तीसरा भाग, बंगाल और बिहार में चौथा भाग, आसाम और मध्यप्रदेश में पांचवां भाग तथा मद्रास में लगभग १५ शतांश डंठल पड़ते हैं।

---

[1] तंबाकू के व्यवसाय की रिपोर्ट पृष्ठ २०-२१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वितरण और व्यवसाय—भारत में अधिकांश कृषक तंबाकू हुक्के या चिलम से पीते हैं और जिनके यहां स्थायी नौकर या मजदूर रहते हैं उन्हें भी तंबाकू देना पड़ती है सो कृषक लोग अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार साल भर के खर्चे इतनी तंबाकू रखकर शेष बेच देते हैं।

कहीं-कहीं व्यवसायी तंबाकू के खड़े खेत ही खरीद लेते हैं और माल स्वयं तैयार कराकर बेचते हैं। अधिकांश स्थानों में कृषक स्वयं तैयार करते हैं। तैयार करने की रीतियां फसल की तैयारी में दी गई हैं।

तैयार माल में बीड़ी के चूरे का चालान बोरों में होता है। सिगरेटवाली तंबाकू खास प्रकार के बक्सों में भी भेजी जाती है। अन्य तंबाकू का चालान गांठों में होता है। तंबाकू की जूड़िया छोटे-छोटे बंडल या रस्सियां जैसी बटी हुई तंबाकू चटाई या चट्टियों में बांधी जाती हैं। कभी-कभी ऊपर-नीचे चट्टी बांध देते हैं और बाजू में मोटी रस्सियां जाली-जैसी बनाकर बांध दी जाती है।

बीड़ी की तंबाकू एक-एक बोरे में लगभग सवा मन आती है। कहीं दो-दो बोरे एक साथ सीं देते हैं तो उनमें ढ़ाईमन के लगभग आती है। गांठ इच्छानुसार छोटी-बड़ी हो सकती है। बहुधा एक गांठ का वजन मन सवामन से लेकर ढ़ाई-तीन मन तक होता है। जो गांठें निर्यात के लिए तैयार की जाती हैं उनके ऊपर भूसा बांध देते हैं। ऐसी गांठों का वजन लगभग नौ-साढ़ेनौ मन तक होता है।

माल की बिक्री पर बाजार का खर्च जैसा अन्य फसलों पर होता है इसमें भी होता है। गाड़ी-भाड़ा, क़स्टम टैक्स, नमूना, दलाली, हमाली तुलाई, दान, गौशाला, चौकीदारी इत्यादि अनेक खर्च करने पड़ते हैं। कहीं-कहीं स्कूल और बोर्डिंग हाउस टैक्स भी लगाया जाता है। कहीं-कहीं तो बिक्री हो जाने पर सूखी भी काटी जाती है। बिक्री में भी कहीं-कहीं बाजारों में कृषकों का माल नीलाम होता है और तुलाई का भी अच्छा प्रबंध रहता है। ऐसी जगह तो कृषकों को अच्छा मूल्य प्राप्त हो जाता है वरना तुलाई में भी कुछ-न-कुछ गड़बड़ रहती ही है। कहीं-कहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोरों का वजन यथार्थ वजन से अधिक काट लेते हैं। कहीं-कहीं नमूने के लिए भी अधिक तंबाकू ले लेते हैं।

बहुधा ऐसा भी होता है कि तंबाकू पर किसान रुपया उधार ले आते हैं। ऐसी सूरत में रुपये का ब्याज तो देना ही पड़ता है और माल ऋण-दाता को सस्ते दामों पर बेचना पड़ता है।

अनुमान है कि उपर्युक्त सब खर्चे का विचार किया जाय तो कृषकों के पल्ले मूल्य का ७५ से ८० शतांश तक ही पड़ता है।

वर्तमान समय में मार्केटिंग विभाग की तरफ से तंबाकू के लिए ग्रेड बनाये गये हैं और उनके वर्ग-निर्माणानुसार माल तैयार किया जाय तो वे गांठ पर उनका लेबल लगा देते हैं जिससे बिक्री में बड़ी सुविधा होती है। इन नियमों की प्रतिलिपि स्थानीय मार्केटिंग विभाग से मिल सकती है या एग्रिकलचर मार्केटिंग एडवाइजर गवर्नमेंट हिंद दिल्ली से मिल सकती है।

तंबाकू खरीदने के पश्चात् कई दिनों तक रखना होती है और गोदामों में रखते हैं वहांपर कुछ सूख जाती है। ऐसी सूख पांच शतांश से लेकर दस शतांश तक होती है। गोदामों में कीट से जो हानि होती है वह लग-भग एक शतांश तक होती है।

छोटे-मोटे व्यवसाइयों द्वारा जो माल खरीदा जाता है उसका प्रांतीय वितरण और निर्यात होता है।

भारतवर्ष के तंबाकू के क्षेत्रफल का लगभग ५२% क्षेत्रफल में हुक्का या चिलम द्वारा पीनेवाली, १६% में बीड़ीवाली, १३% में खाने-वाली, ६% में चिरुटवाली, ८% में सिगरेटवाली, और शेष में अन्य उपयोगवाली जैसे सिगार और सूंघनेवाली उपजाई जाती है। कुल उपज के विचार से देखा जाय तो क्रमानुसार उपर्युक्त मदों के अङ्क लगभग ५६% १०% १३% ६% ७% और २% होंगे चूंकि सबसे अधिक हुक्का-तंबाकू होती है। पहले हम उसीकी तैयारी पर विचार करेंगे।

चिलम द्वारा जो तंबाकू पी जाती है उसके बहुधा सूखे पत्ते ही होते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। हुक्के द्वारा जो तंबाकू पी जाती है उसे खास तौर से तैयार करते हैं। हुक्केवाली तंबाकू की खपत अधिकतर उत्तर भारत में ही विशेष है। दिल्ली, रामपुर, लखनऊ, गोरखपुर, गया, विष्णुपुर (बंगाल) इत्यादि में ऐसी तंबाकू खास-खास व्यवसायियों द्वारा तैयार की जाती है। हुक्का-तंबाकू कड़वी यानी तेज और मीठी ऐसी दो प्रकार की होती है।

कड़वी तंबाकू बनाने के लिए पहले तंबाकू का चूरा किया जाता है और उस चूरे में बराबर या उससे ड्योढ़ा गरम किया हुआ चोआ डालकर तंबाकू गीली की जाती है और उसमें एक प्रकार का विशेष परिवर्त्तन (Fermentation) हो जाता हैं। कभी उसे अच्छी बनाने के लिए उसमें चंदन का चूरा, इलायची, लौंग, दालचीनी इत्यादि मसाले भी मिला देते हैं। ऐसी तंबाकू का गोला काला-सा होता है।

मीठी या बढ़िया तंबाकू—इसके लिए केला, कटहल, अमरूद अनन्नास, बेर इत्यादि फलों के साथ तंबाकू के छोटे-छोटे गोले बनाकर उन्हें सुखाते हैं। ऐसे चूरे में फिर चोआ मिलाकर मटकों में भरकर उन्हें जमीन में गाड़ देते हैं और मटकों के मुंह मिट्टी के ढक्कन और चिकनी मिट्टी से बंद कर देते हैं। इससे तंबाकू में खमीर उठ आता है। तैयार माल को खमीरा कहते हैं। खमीरा तैयार होने में एक महीने से लेकर अच्छे खमीरे के लिए एक साल भी लग सकता है परंतु व्यवसायी अधिकतर दूसरे-तीसरे महीने में निकालकर उसमें और तंबाकू का चूरा तथा इत्रादि सुगंधित पदार्थ, चंदन का चूरा या मसाले मिला देते हैं। चूंकि ऐसा पदार्थ मंहगा पड़ता है इसलिए सस्ता करने के लिए उसमें महीन बालू मिट्टी या दूसरे दरख्तों के पत्तों का चूरा भी मिला देते हैं।

खानेवाली तंबाकू—इसके लिए कुछ लोग ज़र्दा (मसालेदार) तंबाकू बनाकर खाते हैं और ऐसी तंबाकू अधिकतर पान के साथ खाई जाती है। अधिकांश लोग पत्ते ही खाते हैं, वे भी बिना पान के। कुछ लोग खाने के पहले हाथ में थोड़ा-सा चूरा लेकर उसमें चूना मिलाते हैं और फिर मुंह में रख लेते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जर्दा या मसालेदार तंबाकू—लखनऊ और बनारस की विख्यात है। ऐसी तंबाकू सूखी, गीली या दानेदार (छोटी-छोटी गोलियां) होती हैं।

सूखा जर्दा—इसमें तंबाकू का चूरा चूने के साथ इतना उबाला जाता है कि पानी सूख जाता है। उबलते समय उसे सुगंधित करने के लिए उसमें मसाले भी डाल देते हैं। सूखे हुए पत्तों पर केसर या अन्य खाने-वाले रंग चढ़ा देते हैं।

गीली तंबाकू बाजार में छोटी-छोटी डिब्बियों में बिकती है। इसकी तैयारी के लिए तंबाकू का चूरा सुगंधित द्रव्य और पानी के साथ उबाला जाता है। खूब उबलने के पश्चात् उसे चलनी से छान लेते हैं और फिर गाढ़ा करते हैं। छने हुए गाढ़े पदार्थ में केसर, कस्तूरी या अन्य सुगंधित द्रव्य-जैसे गुलाबजल या इत्र इत्यादि देते हैं।

उपर्युक्त गीली तंबाकू सुखाकर उसकी छोटी-छोटी गोलियां बना देते हैं तो वह दानेदार जर्दा बन जाता है। ऐसी मसालेवाली तंबाकू में सोने-चांदी के वर्क भी डालते हैं।

बीड़ी—भारतवर्ष में बीड़ी की खपत भी बहुत अधिक है और प्रायः सब शहरों में जहां-तहां तंबाकू होती है थोड़ी-बहुत बीड़ियां बनाई जाती हैं परंतु सबसे अधिक बीड़ियां मध्यप्रदेश में बनती हैं क्योंकि वहां तेंदू के पत्ते जिसकी बीड़ियां बनाई जाती हैं, भंडारा जिले के जंगलों में बहुत मिलते हैं। भारत में बननेवाली बीड़ी का लगभग एक चतुर्थांश मध्यप्रदेश में बनता है। बंबई और मद्रास में बीस-बीस शतांश के लगभग बीड़ी बनती हैं।

यद्यपि बीड़ियां मध्यप्रदेश में अधिक बनती हैं परंतु बीड़ी की तंबाकू बंबई राज्य से गुजरात तथा नीपानी से आती है और गुजराती या नीपानी तंबाकू कहलाती है। व्यवसायी लोग इन पत्तों के साथ स्थानीय तंबाकू के पत्ते मिला देते है ताकि कम खर्चे में बीड़ियां तैयार हों और नफा पूरा मिले।

बीड़ी बनाने के पत्ते पहले पानी में भिगोये जाते हैं और बाद में कैंची

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से उन्हें काट देते हैं। बहुधा टीन के टुकड़े ऐसे कटे हुए होते हैं कि उन्हें पत्तों पर रखकर पत्ते काटे जायं तो आवश्यकीय नाप के कट जाते हैं। बीड़ियां दो इंच से तीन इंच लंबी होती हैं। बहुधा ढाई इंच बीड़ी के पत्ते के नाप की चारों बाजू लगभग ३·२", ३", १·८" और १·५" की होती है। बीड़ी बनानेवाला बहुधा सूप या किसी बरतन में तंबाकू का चूरा रख लेता है और बांये हाथ में पत्ता रखकर दाहिने हाथ से उसपर कुछ तंबाकू रखकर मोड़ करके बीड़ी बना देता है और डोरे से बांध देता है। बाद में दस-दस या पच्चीस-पच्चीस बीड़ी के बंडल बनाकर पांचसौ बीड़ी का बड़ा बंडल बना देता है जिसपर मालिक कारखाने की मोहर या कारखाने का नाम और कोई तस्वीर रहती है। दस या पच्चीस बीड़ीवाले छोटे बंडल पर भी मालिक का नाम और कोई तस्वीर रहती है। साधारणः एक तेंदू के पत्ते से दो-तीन बीड़ी बनें इतने टुकड़े निकलते हैं और एक हजार बीड़ी के लिए छोटी-बड़ी बीड़ी अनुसार पांच से आठ छटांक तंबाकू लगती है। बीड़ियों में तंबाकू और पत्ते का वजन लगभग बराबर होता है।

बीड़ी के बाद अधिक उपज चिरुटवाली तंबाकू की आती है परंतु चूंकि चिरुट और सिगरेट में विशेष अंतर नहीं होने से उनकी बनावट का वर्णन सिगरेट के वर्णन के बाद दिया गया है।

सिगरेट—अच्छी सिगरेट बनाने के लिए भारतीय सिगरेटवाली तंबाकू के पत्तों के साथ अमेरिका और विलायत से मंगाये हुए पत्ते भी मिलाये जाते हैं। भारतीय तंबाकू के पत्ते जब कारखाने में आ जाते हैं तो उनकी भी छांटकर श्रेणियां बनाई जाती हैं और उनका भी मिश्रण एक प्रमाणित परिमाण में किया जाता है। तंबाकू के पत्तों पर चोआ या ग्लुकोज (Glucose) का पानी और सुगंधित तेल छिड़के जाते हैं। कहीं-कहीं कुछ और रसायनिक पदार्थ भी डाले जाते हैं।

पत्ते काटना—पत्तों में पहले एक खास कमरे में भाप द्वारा आवश्यकतानुसार नमी लाई जाती है। बाद में बीच की नस निकाल डालते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं और पत्तों को ढेरी में दवाकर पकाते हैं। उसके पश्चात् मशीन से काटते हैं और चलनियों से चालते हैं ताकि धूल और पत्तों की नसों के टुकड़े अलग-अलग हो जायं। उसके बाद उससे सिगरेट बनाते हैं। सिगरेट मशीन से ही बनाते हैं। तंवाकू मशीन में भर देते हैं और कागज लगा देते हैं। सिगरेट पर जो कुछ छपा रहता है, वह भी उसी मशीन में छपता है। तैयार सिगरेट कुछ दिनों के लिए एक खास कमरे में रखे जाते हैं और बाद में कागज के पैकेटों में भरना हो तो १० और, टीन में भरना हो तो ५० भरते हैं।

चिरुट और सिगार—ये करीब-करीब एक से ही होते हैं परंतु सिगार अच्छा माना जाता है। चिरुट भारतीय तंवाकू से मद्रास, मैसूर और हैदराबाद में बनाते हैं। सिगरेट के लिए ऊपर लपेटनेवाला पत्ता विदेशों से मंगाया हुआ होता है। चिरुट और सिगार के लिए तीन किस्म के पत्ते रहते हैं—बीच में भरनेवाला, उनपर लपेटनेवाला और सबसे ऊपर लपेटनेवाला पत्ता। पत्तों को कुछ गीला करते हैं ताकि वे टूटें नहीं और फिर उनकी छटंती होती है। सिगरेट के लिए पहले भरनेवाले पत्ते लपेटकर उनपर बड़ा पत्ता लपेटते हैं और प्रेस में दवाते हैं। बाद में विदेशी पत्ता ऊपर लपेटकर चिपका देते हैं। चिरुट में भी ऐसा ही किया जाता है परंतु एक तो इन्हें प्रेस में नहीं रखते और दूसरे इनके लिए देशी पत्ता ही ऊपर लपेटा जाता है। ये लकड़ी के डिब्बों में भरकर भेजे जाते हैं।

सूंघनेवाली तंबाकू—वैसे थोड़ी-बहुत यह सब जगह बनती है और सूंघनेवाले स्वयं भी बना लिया करते हैं परंतु अधिकतर इसकी तैयारी मद्रास, पंजाब और सीमाप्रांत में होती है।

मद्रास में तंबाकू के पत्तों को काटकर कुछ भूना जाता है और बाद में महीन बुरादा किया जाता है जिसे चालकर फिर थोड़ा भूनते हैं। ठंडा होने पर उसमें कुछ चूना और घी मिलाकर महीन चलनी से छानते हैं। कभी-कभी उसमें कस्तूरी नौसादर और सुगंध के लिए कुछ इत्र इत्यादि मिला देते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पंजाब में तंवाकू का चूर्ण बनाकर उसे पंद्रह-बीस दिन तक पानी में सड़ाते हैं। बाद में उसे सुखाकर महीन पीसते हैं और चूना, मक्खन नौसादर इत्यादि मिला देते हैं और महीन पीसकर छान लेते हैं।

सीमाप्रांत में तंवाकू के चूर्ण पर कुछ पानी छिड़ककर उसे कंवलों से दवाकर करीब दो-तीन महीने रखते हैं। समय-समय पर हवा लगाकर पानी छिड़क करके फिर दवा देते हैं। जब उसमें आवश्यकतानुसार सुगंध आ जाती है तो उसमें चूने का पानी मिलाकर काम में लाते हैं। कभी-कभी-रंग भी मिला देते हैं।

उपयोग और गुण—तंवाकू के पत्ते खाने, सूंघने, बीड़ी, सिगरेट, चिरुट और सिगार के रूप में अथवा हुक्के या चिलम द्वारा धूम्रपान के लिए काम में लाये जाते हैं। इनके डंठलों का चूरा करके उसे भी हुक्के-वाली तंवाकू में मिला देते हैं। पत्तों का सत लाही इत्यादि कीट के लिए विष का काम देता है। तंवाकू में निकोटीन नाम का जो पदार्थ रहता है उसका लवण निकोटीन सलफेट भी कीटनाशक विष है।

तंवाकू के बीज से लगभग २५ से ३० शतांश तेल निकलता है जो खाने के काम में तो नहीं आता परंतु अन्य तेलों की भांति दूसरे व्यवसाय में काम आ सकता है। खली एरंडी की खली जैसे खाद के काम में आ सकती है।

गुण—जुकाम (सर्दी) हो जाने से तंबाकू सूंघी जाय तो सिर का भारीपन मिट जाता है। कुछ लोग तंवाकू के चूर्ण से दतून भी करते हैं क्योंकि इसमें कुछ कीटनाशक गुण हैं। पीनेवालों का कहना है कि काम करते-करते कुछ थकावट-सी मालूम पड़े तो इसके पीने से कुछ सोचने की शक्ति बढ़ जाती है। गरीब लोग काम करते समय तंवाकू पीने के बहाने कुछ विश्राम कर थकावट दूर कर लेते हैं। अधिक सेवन से लाभ की अपेक्षा हानि ही होती है। अधिक खाने और पीने से हाजमा बिगड़ जाता है और पित्त बढ़ जाता है। बाहरी उपयोगों में इसके पत्ते बांधने से गठिया वाय में कुछ हद्द तक लाभ होता है। सूजन में भी लाभ होता है। हुक्के के पानी से जिन घावों में कीड़े पड़ गये हों वे धोये जाते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: ५ :

ईख, ऊख, गन्ना, सांठा

Sugarcane *Saccharum officinarum*

ईख या ऊख संस्कृत शब्द "ईक्षु" से बने हैं। अधिकांश स्थानों में साधारणतः गन्ना शब्द काम में लाया जाता है, इसलिए यहांपर 'गन्ना' शब्द ही उपयोग में लाया जायगा।

गन्ने का जन्मस्थान भारतवर्ष ही माना गया है। अथर्ववेद में "इक्षु" का वर्णन है जिससे ज्ञात होता है कि आज से तीन हज़ार वर्ष पूर्व भी भारतवर्ष में गन्ने की खेती होती थी। इसके पहले इसकी खेती होती थी या यह सिर्फ जंगली पौधा था इसके प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। चौधरी महोदय[1] के लेखानुसार यह कहा जा सकता है कि आज से तीन हजार वर्ष पूर्व भी भारतीय कृषक गन्ने की खेती करते थे और गुड़ बनाते थे। भारत में यह कला ऐसी ख्याति पा चुकी थी कि ईसा की छठवीं सदी में चीन के सम्राट् ने इस कला का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक कमीशन भेजा था। धीरे-धीरे इसकी खेती का प्रचार अन्य देशों में भी होने लगा। कई अन्य देशों ने तो गन्ने की खेती में इतनी उन्नति की कि उपज के हिसाब में भारत को दबा दिया[2]।

गन्ने की खेती की प्रतियोगिता में भारत के पिछड़ने के दो मुख्य

---

[1] Chaudhary R. Science and Culture 1947. Vol. 12 p. 467.

[2] सन् १९३५-३६ में भारत की औसत उपज जहां १५ टन प्रति एकड़ थी वहां जावा में उपज ५६ टन और हवाई में ६२ टन पड़ी थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण हैं। एक तो यह कि विदेशियों को नई भूमियां हाथ लगीं। हमारी अच्छी भूमि में तो हजारों वर्षों से खेती हो रही है, इससे भूमि का स्वभाविक ऊर्वरापन कम हो गया है। दूसरा कारण यह है कि हमारे अधिकांश कृषकों के पास पूंजी की कमी है जिससे वे भारी पैमाने पर खेती करने में असमर्थ हैं। वे न तो भारी यंत्रों का प्रयोग कर सकते हैं और न वैज्ञानिक ढंग से कृत्रिम खादों का। फिर भी हमारी स्थिति ऐसी है कि यदि ठीक से खेती की जाय तो हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से कर सकते हैं।

गन्ने के पौधे से नागरिक तथा ग्रामीण सब परिचित हैं। पौधा ज्वार के पौधे जैसा लेकिन उससे मोटा और नजदीक-नजदीक गठानेवाला होता है। ऊंचाई में जाति-अनुसार उपयोगी भाग की ऊंचाई पांच फीट से लेकर सात-आठ फीट तक होती है। जिन पौधों में फूल आ जाते हैं उनकी ऊंचाई[१] नापी जाय तो दस फीट से भी अधिक होती है। गन्ने के फूल की डंडी कलंगी जैसी होती है।

भारतवर्ष में गन्ने की जातियों में सुधार की ओर ध्यान बीसवीं सदी के प्रारंभ में हुआ। मद्रास में जब लाली रोग (Red rot) नाम की व्याधि से गन्ने की फसलें नष्ट होने लगीं तो १९०१-२ में डाक्टर बार्बर महोदय ने सामलकोटा फार्म पर इस व्याधि से बचनेवाली जातियां निकालने का प्रयत्न किया। दस-बारह साल के कठिन परिश्रम के बाद 'रेडमौरीशस' नाम की एक जाति ऐसी मिली जिसमें व्याधि से बचने की विशेष शक्ति थी और उसका प्रचार किया गया। जैसाकि फसलों के सुधार में होता है पहले प्रयत्न तो देशी तथा विदेशी जातियां लगाकर उनमें चुनाव किया गया। बाद में सङ्कर क्रिया (Crossing) द्वारा नई जातियां

---

[१] Noel Deerr 1911. Cane Sugar P. 2 में लिखते हैं कि गन्ने की ऊंचाई अच्छे खेतों में २० फीट तक भी हो सकती है। प्रत्येक गन्ने में जाति-अनसार २० से लेकर ६० आंखें तक हो सकती हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निकाली गईं। इस कार्य को प्रोत्साहन देने के लिए कोयम्बतूर मद्रास में सन् १९१२ में डाक्टर बार्बर की अध्यक्षता में कार्यारंभ हुआ। उन्होंने कई जातियां निकालीं। सन् १९१९ में बार्बर महोदय ने अवकाश ग्रहण कर अपना भार श्री वेनकटरमन पर छोड़ा जिन्होंने बड़ी योग्यता से सन् १९४२ तक कार्य संचालन किया। १९४२ से इस कार्य का भार श्रीयुत नंदलाल दत्त सम्हाले हुए हैं। वर्तमान समय में भारतीय सरकार के गन्ने की खेती के माहिर (Sugrcane expert) आप ही हैं। कोयम्बतूर के गन्ने सिर्फ देश में ही नहीं विदेशों में भी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।

उपर्युक्त स्थान तथा कार्यकर्ताओं के सिवाय भारत में अन्य स्थानों में कुछ और कार्यकर्ताओं द्वारा भी गन्ने की खेती में काफी खोज हुई है। इनमें उत्तर प्रदेश में क्लार्क महोदय तथा बिहार में श्रीयुत खन्नाजी ने बहुत कार्य किया है। दक्षिण भारत में मैसूर में भी काफी कार्य हुआ है।

वर्तमान समय में भारतीय सेंट्रल शूगर कमिटी नाम की संस्था जो बनी है अब भारत के सब गन्ने-संबंधी कार्यों का संचालन इस संस्था द्वारा हो रहा है। भारत में पंजाब में जालंधर और रिसालेवाला (लायलपुर), उत्तर प्रदेश में मुजफ्फरनगर और शाहजहांपुर, बिहार में पूसा, बंबई में पाडगांव, मद्रास में अन्नक्कापल्ली तथा गुड़ियात्तम, मसूर में हब्बल आदि स्थानों में गन्ने की खोज-संबंधी प्रयोगशालाएं खुली हुई हैं। स्थानीय कृषक उपर्युक्त स्थानों से चाहें तो विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

गन्ने की जातियां—जो गन्ना पहले से भारतवर्ष में होता आ रहा है उसे आजकल देशी कहते हैं और नये गन्ने बहुधा नंबर से ही समझे जाते हैं। आज से पंद्रह-बीस वर्ष पहले जहां देशी गन्ने की जातियां तीन-चौथाई क्षेत्रफल में उपजाई जाती थीं वहा अब कुल क्षेत्रफल का छटवां भाग ऐसा है जिसमें देशी गन्ना उपजाया जाता है। शेष में अधिकतर कोयम्बतूर के नंबरी गन्ने ही फैले हुए हैं क्योंकि इनकी उपज देशी की अपेक्षा अधिकांश भागों में ड्योढ़ी-दुगुनी हो जाती है। इनमें चीनी अधिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और रेशा कम होता है।

अन्य फसलों की भांति गन्ने की नंबरी जातियां कई हैं और प्रांतीय कृषि विभागवालों ने भी स्थानीय भूमि तथा जलवायु को मान्य हो ऐसी कई जातियां निकाली हैं। स्थानाभाव के कारण संपूर्ण सूची यहां देना असंभव है फिर भी बीज और बोआई के वर्णन में कुछ मुख्य जातियां भी बताई गई हैं।

मोटे तौर पर हम गन्ने की तीन श्रेणियां कर सकते हैं। जल्दी तैयार होनेवाले, मध्यम श्रेणी के तथा देरी से आनेवाले। जहां चीनी के कारखानों को अधिक दिनों तक गन्ना देना होता है वहां तीनों जाति के गन्ने लगाना उत्तम होगा। जहां गुड़ बनाना हो वहां तो जल्दी तैयार होनेवाली जातियां ही लगानी चाहिए।

दूसरी रीति से गन्ने का विभाजन किया जाय तो पतले, मध्यम मोटाईवाले तथा मोटे ऐसे तीन विभाग हो सकते हैं। पतले गन्ने अधिकतर कठोर और मोटे गन्ने तुलनात्मक दृष्टि से नर्म होते हैं। मोटे गन्नों में कुछ तो ऐसे नर्म होते हैं कि वे चूसने के काम आते हैं। शहरों के निकट बहुधा ऐसे गन्ने अधिक उपजाये जाते हैं।

गन्ना कठोर और पतला या नर्म और मोटा चुना जाय यह स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर है। जहां जंगली पशुओं से हानि होने की विशेष संभावना हो, जहां सिंचाई की सुविधा अच्छी न हो, और जहां की जलवायु के तापमान में न्यूनाधिकता अधिक हो अथवा जहां वर्षा नियमित रूप से न होती हो वहां पतली जाति का या मध्यम श्रेणी का कठोर गन्ना ही लगाना चाहिए। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि मोटे गन्ने के लिए अधिक पानी की आवश्यकता होती है और उनमें व्याधियां तथा कीट और जंगली पशुओं से संरक्षण-शक्ति कम होती है।

भूमि और जुताई—गन्ने के लिए सर्वोत्तम भूमि दुमट कछार होती है। उससे दूसरे दर्जे की मटियार दुमट होगी। वर्तमान समय में वैज्ञानिकों ने अपने परिश्रम से ऐसी-ऐसी जातियां भी निकाली हैं जो हलकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलुआ दुमट में भी हो जाती हैं और उधर भारी जिस भूमि में कुछ समय के लिए पानी लगता हो उसके लिए भी हैं लेकिन अच्छी जाति और अच्छी उपज के लिए दुमट मिट्टी ही उचित होगी। पी० एच० के विचार से देखा जाय तो छः से आठ पी० एच० वाली भूमि में गन्ने की उपज अच्छी होती है।

जुताई—गन्ने की फसल लगभग एक साल में तैयार होती है यद्यपि, दक्षिण भारत की तरह कहीं-कहीं जल्दी बोया जाय तो पंद्रह महीने से भी अधिक लग जाते हैं। ऐसी फसल भूमि से खाद्य द्रव्य भी काफी खींचती है इसलिए इसके लिए जुताई के साथ सन के हरे खाद का प्रबंध हो सके तो अच्छा होगा। रबी की फसल ले लेने के पश्चात् खेतों की एक बार हल से जुताई करके छोड़ देना चाहिए। उसके बाद बरसात के कुछ दिन पहले मिल सके तो गोबर का खाद लगभग पचास-साठ मन देना चाहिए ताकि हरे खादवाली फसल बहुत जोर की हो। हरे खाद के बोने के पहले लगभग तीन-चार मन हड्डी का चूर्ण भी डाल देना चाहिए। यदि ऐसा खाद कुछ कम सड़ा हो तो भी कुछ हानि नहीं होगी। ऐसे खाद को बखर या हेरो से मिट्टी में मिलाकर छोड़ देना चाहिए। ज्योंही बरसात शुरू हो कि एक बार बखर से जोतकर सन के बीज एक मन प्रति एकड़ छींट देना चाहिए और छींटने के पश्चात् हेरो से उन्हें मिट्टी में मिला देना चाहिए। फिर बरसात में तीन बार हलों से जुताई कर देनी चाहिए। ढेले पड़ जायं तो उन्हें तोड़ने के लिए पठार (सोहागा) चला देना चाहिए। यदि ढेले छोटे हों और मिट्टी भुर-भुरी हो अर्थात् चिकनी न हो तो उलटे बखर से यानी लोहे की पारा ऊपर रखकर बखर चलाने से भी ढेले टूट जायंगे।

खाद और हेर-फेर—गन्ने की फसल ऐसी है जिसकी उपज बिना खाद के अच्छी हो ही नहीं सकती। इसकी फसल लगभग बारह महीने की फसल है और दक्षिण बंबई की तरह जहां गन्ना शरद् ऋतु के आरंभ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में ही वोया जाता है वहां पंद्रह-सोलह महीने[१] तक गन्ना खेतों में रह जाता है, इसलिए खाद देना अत्यंत ही आवश्यक है।

गन्ने के लिए खाद के चुनाव और उसकी मात्रा का अनुमान करने के लिए निम्नलिखित वातों को ध्यान में रखना उचित होगा।

(१) कमजोर भूमि में खाद का असर विशेष दिखलाई देता है।
(२) अधिक खाद देने से पानी भी अधिक देना होगा।
(३) अधिक खाद देने से गन्ने के रोपने की कतारों में दूरी बढ़ाई जा सकती है।
(४) खाद दो-तीन वार देने से उपज तो कुछ अधिक होती है परंतु आर्थिक दृष्टि से एक बार अच्छा खाद दे देना ही उचित है।
(५) तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो ना० का अधिक खाद दे देने से चीनी कम वैठती है[२]।

रेगे[3] महोदय खाद के प्रयोगों का सारांश निम्नलिखित बतलाते हैं—

(१) खली का खाद गोवर या ऐमोनियम सलफेट के खाद से उत्तम होता है।
(२) गन्ने के लिए महुआ की खली अन्य खलियों से, आर्थिक दृष्टि के विचार से, उत्तम होती है।
(३) सन का खाद गन्ने के लिए उत्तम होता है।
(४) कृत्रिम खादों में ना० के खाद अच्छे हैं।
(५) फा० के खादों की आवश्यकता कहीं-कहीं पड़ती है।

---

[१] हवाई द्वीप में तो दो-दो साल तक गन्ना खेतों में रहता है।

[२] शाहजहांपुर में विना ना० खाद देकर गन्ना उपजाया। उसके रस में चीनी (Sugar) की मात्रा १६·४५% आई। ५० सेर ना० खाद के रूप में दी तो वह मात्रा १७·८१% हो गई और १०० सेर ना० से तो १५.४३% ही आई। U. P. Bull. 72, 1937. P. 50

[3] Indian Council of Agriculture Res. Bull No. 41.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिंह[१] महोदय के प्रयोगों से यह ज्ञात होता है कि ना० की कमी से गन्ने पतले और छोटे होते हैं। अधिक मात्रा से इसमें चीनी की मात्रा कम हो जाती है। फा० के खाद से रस में चीनी की मात्रा बढ़ जाती है।

गन्ने की खेतीवालों के लिए खाद देने की उत्तम और कम खर्चवाली युक्ति यह होगी कि वर्षा ऋतु में सन का हरा खाद उपजाकर जब वह लगभग आठ-दस सप्ताह का हो जाय तो उसे गाढ़ दें। चूंकि गन्ना वहुत देरी से लगाया जाता है इसलिए सन को कुछ अधिक समय तक भी खड़ा रख सकते हैं। जब बाढ़ काफी हो जाय और ताग (Fibre) कुछ पक जाय उस वक्त सन के पौधों का ऊपरी भाग काटकर गाढ़ दें और डंडियां काटकर उनसे सन निकाल लें। ऐसा सन बिल्कुल पके हुए सन जैसा मजवूत तो नहीं होगा परंतु फिर भी साधारण काम के लिए रस्सियां सुतली इत्यादि वनाने के लिए अच्छा होगा। ऐसा करने से सन भी मिल जायगा और खाद का काम भी होगा। स्मरण रहे कि यदि पूरे पौधे गाड़ दिये जायं तो गन्ने की उपज कुछ अधिक होगी परंतु वैसी स्थिति में सन नहीं मिलेगा।

हरे खाद का प्रयोग ऐसे स्थानों में, जहां दीमक वहुत लगती हो, वहां करना हो तो इतना ध्यान रहे कि इसे वहुत अधिक न बढ़ने देकर वर्षा के समाप्त होने के पहले ही गाढ़ दें ताकि यह अच्छी तरह से सड़ जाय।

हरे खाद के प्रयोग भारतवर्ष में कई जगह हुए हैं और अधिकांश भागों में सन का ही प्रयोग किया जाता है। पंजाब की तरफ ग्वार[२] की फसल भी इस कार्य के लिए उत्तम पाई गई है। जहां वर्षा साठ इंच से अधिक होती हो वहां ढेंचा[३] की फसल भी अच्छी होती है। पच्चीस-तीस इंचवाली वर्षावाले स्थान में ग्वार काम में लाई जा सकती है।

---

[१] Singh B. N. 1941. Indian Asso. Sci. 14.

[२] बीज पंद्रह सेर प्रति एकड़।

[३] बीज दस सेर प्रति एकड़।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जहां वर्षा पच्चीस-तीस इंच से लेकर साठ इंच तक होती है वहां हरा खाद सन का ही अच्छा होगा।

सन के हरे खाद की उपज दोसौ से तीनसौ मन तक ली जाती है। हरे खाद के देने में एक फसल नहीं मिलती लेकिन यदि सन का ताग ले लिया जाय तो कुछ द्रव्य मिल जाता है।

हरे खाद के सिवाय गोबर का खाद खली या कृत्रिम खाद (एमोनियम सलफेट)[1] भी देना होगा। क्योंकि सिर्फ सन का ही खाद काफी नहीं होता।

जहां हरे खाद का प्रबंध न हो वहां गोबर का खाद ही अधिक मात्रा में देना होगा। इसकी भी यदि कमी हो तो खली या कृत्रिम खाद से उसकी पूर्ति करनी चाहिए।

खाद की मात्रा

गन्ने के खाद्य पदार्थ—गन्ने की कई जातियां हैं और जाति-अनुसार कुछ अंश तक खाद्य पदार्थों का न्यूनाधिक शोषण होता है, इसलिए विश्लेषणों के अंक में कुछ-न-कुछ अंतर मिलता ही है। यहांपर खाद की गणना के लिए हम सहस्रबुद्धे[2] महोदय के दिये हुए अंक लिये लेते हैं। ये मात्राएं जलरहित पदार्थों की है।

	ना०	फा० पे०	पो० आ०	खटिक
जड़ें और खुटियां	०.३०%	२.१३%	१.६२%	१.०८%
सूखे पत्ते	०.२३%	०.०९%	१.२७%	०.७०%

---

[1] एमोनियम सलफेट जावा में इस रीति से देते हैं कि उसका पानी में पहले खोल बनाते हैं। फिर एक नोकीले खूंटे से गन्ने के (Clump) के पास छेद करके उसमें थोड़ा-थोड़ा घोटा देते हैं। ऐसा करने से खाद जड़ों के निकट पहुंच जाता है। बन सके तो इस रीति से ही इस खाद को देना चाहिए।

[2] बंबई कृषि-विभाग का बुलेटिन नं० १७४ स १९३३ पृ० ३६।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

	ना०	फा० पे०	पो० श्रा०	खटिक
बांड श्रोर हरे पत्ते	०.५८%	०.४३%	०.७६%	०.३३%
पैरने जैसे गन्ने	०.२०%	०.३६%	०.३४%	०.०६%
पैरने जैसे हरे गन्ने[1]	०.०५%	०.०६%	०.०८%	०.०२%

गन्ने की उपज[2]

उत्तर भारत	मन	दक्षिण भारत	मन
उत्तर प्रदेश	३६१	मद्रास	६४८
बिहार	३०४	बंबई	५७७
बंगाल	४५१	हैदराबाद	५२५
	११११६		१७५०
श्रौसत	३७२		५८३

इन श्रंकों को देखा जाय तो उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के लिए खाद की मात्रा पृथक-पृथक होगी।

उपर्युक्त श्रंक श्रौसत उपज के हैं। हमारे शिक्षित पाठक जब गन्ने की खेती करेंगे तो अवश्य अधिक उपजवाली चुनी हुई जातियां लगायेंगे और खेती की आधुनिक रीति-अनुसार खेती करके उत्तर भारत में कम-से-कम ६०० मन की उपज तो अवश्य ला सकेंगे। ऐसी उपज कई कृषि-

---

[1] हरे गन्ने में ७० से ७५ शतांश जल रहता है। पतले में ७० तो मोटे गन्ने में ७५ शतांश तक होता है। उपर्युक्त गणना ७५% जल मानकर की गई है।

[2] ये अंक चीनी के व्यवसाय की रिपोर्ट १९४३ पृष्ठ १९ से लिये गये हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फार्मों पर आती भी है।[1] दक्षिण भारत की तरफ हम उत्तर भारत की ड्योढ़ी उपज यानी लगभग ९०० मन ले सकते हैं।

०.०५% ना० गन्ने में मानकर गणना करें तो उत्तर भारत के छःसौ मन गन्ने में बारह सेर ना० आती है। दक्षिण भारत की ड्योढ़ी उपज के लिए अठारह सेर हुई।

उपर्युक्त उपज पेरने जैसे गन्ने की है। गन्ने के साथ-साथ बाड़, हरे तथा सूखे पत्ते और खूंटियां भी खेतों से बाहर निकाली जाती हैं जिनके द्वारा भी खाद के तत्त्व बाहर जाते हैं। उपर्युक्त[2] अंगों द्वारा लगभग ड्योढ़ी ना० बाहर जाती है। इस हिसाब से उत्तर भारत के लिए ३० सेर और दक्षिण भारत के लिए ४५ सेर ना० चाहिए। चूंकि गन्ने की फसल पहले साल रोपी हुई और दूसरे साल रखत की लेते हैं, पहली फसल को उपर्युक्त मात्रा से ड्योढ़ी या कुछ अधिक यानी ५० सेर ना० उत्तर भारत के लिए और ७५ सेर दक्षिण भारत के लिए होनी चाहिए।

यदि सन का खाद दिया हो तो उपर्युक्त मात्रा में से पच्चीस सेर ना० कम कर सकते हैं। यदि सन् का खाद न दिया हो तो उपर्युक्त मात्रा ना० की किसी भी प्रकार की खली के रूप में अथवा एमोनियम सलफेट के रूप में देना चाहिए। गोबर का खाद ही देना हो तो उत्तर-भारत के लिए ढाईसौ से तीनसौ मन और दक्षिण भारत के लिए चार

---

[1] Sethi R. L. U. P. Bull 72-1937. गोरखपुर ८०० से ९०० मन, प्रतापगढ़ ९५० मन, हरदोई ९५० मन, मुजफ़्फरनगर ८०० मन, नगीना ८०० मन। सेठी महोदय ने साथ-साथ कृषकों के खेतों की उपज भी दी है; जो करीब उपर्युक्त उपज की आधी आती है। सन् १९४२-४३ में ७५० कृषकों के यहां की उपज का औसत देखा गया तो ४७० मन पड़ा था।

[2] Yagnnarayan Ayyar-Field Crops of India p. 202. 1944 के अंकों के आधार पर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सौ से पांचसौ मन देना उत्तम होगा। अगर बन सके तो दूसरे साल-वाली गन्ने की फसल को भी कुछ कृत्रिम खाद देना लाभप्रद होगा।

उपर्युक्त गणना सूत्रात्मक रूप से ६०० और ६०० मन गन्ने की उपज मानकर की गई है। इतना ध्यान रखना चाहिए कि खाद के सिवाय वर्षा, स्थानीय जलवायु और भूमि का भी काफी असर होता है। इसलिए हमारे पाठकों को चाहिए कि स्थानीय उपज को ध्यान में रखकर गणना करलें।

बहुधा यह कहा जाता है कि सन और गोबर का खाद वोते समय देकर खली और एमोनियम सलफेट मिट्टी चढ़ाते समय देना अच्छा होता है। अगर सहूलियत हो तो ऐसा करना उत्तम है वरना आर्थिक दृष्टि से एक बार देने में भी कोई हर्ज नहीं है।

कुछ क्रियात्मक प्रयोग-फल

हरा खाद--हरे खाद के प्रयोग वैसे तो सब जगह हुए हैं परंतु उत्तर प्रदेश और बिहार में अधिक हुए हैं। हरी फसल के लिए सन ही अच्छा सिद्ध हुआ है। यह खाद देने की सबसे सस्ती रीति है। लेकिन सिर्फ इसीसे खाद की मांग पूरी नहीं होती। इसके देने के वाद गोवर, खली या एमोनियम सलफेट का खाद देना होता है।

गोबर का खाद—यह तो हर फसल के लिए सर्वोत्तम खाद है, परंतु यदि ना० की मात्रा के आधार पर कृत्रिम खादों के साथ तुलना की गई तो कृत्रिम खाद या खलियों ने इससे अधिक उपज दिखाई। इसका असर दूसरे साल की फसल में दिखलाई देता है।

खलियां—कोई भी खली काम में लाई जा सकती है। उनमें ना० की मात्रा न्यूनाधिक रहती है सो गणना करके डालनी चाहिए। महुआ की खली, जो अन्य फसलों के लिए काम की नहीं होती, गोरखपुर में मूल्याधार के ऊपर नीम और एरंडी की खली के रूप में डालकर देखा गया तो महुआ की खली सस्ती पड़ी। इसका खास कारण यह है कि दूसरी फसलों की आयु कम होती है और गन्ने की लगभग साल भर की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होती है सो उसका उपयोग हो जाता है। मूल्याधार पर डालने से जहां एरंडी की खली २० मन डाली जा सकी, नीम की खली १२ मन और महुआ की ५८ मन डाली गई। उपज जहां एरंडी की खली से ७६४ मन आई, नीम की खली से ८१५ मन और महुआ से ८५० मन आई।

जब ना० की मात्रा पर डाली तो एरंडी की २० मन, नीम की १५ मन और महुआ की ३६ मन पड़ी। उपज के अंक ७६८, ७५१ और ७०१ मन आये।

जब खलियों के वजन[1] पर डालकर देखी गई और प्रत्येक २० मन डाली गई तो उपज क्रमानुसार ७४७, ७८६, और ७६२ मन आई।

यह प्रयोग अत्यंत ही उत्तम है और खाद के लिए ऐसे ही प्रयोग होने चाहिए ताकि कृषक अपने स्थानों के मूल्याधार पर गणना करके खाद डाल सकें।

इन प्रयोगों में बिना खाद के कितनी उपज आई उसके अंक दिये होते तो हम यह जान पाते कि खलियों से कितना लाभ हुआ। इन अङ्कों से तुलनात्मक अङ्क अवश्य मिले।

कानपुर के एक प्रयोग में ५० सेर ना० सरसों, महुआ, कुसूम और एरंडी की खली के रूप में देकर देखा तो पांच साल की औसत उपज तीस, बीस, चौदह और सत्रह शतांश बढ़ी।

मध्यप्रदेश के थारसा फार्म पर खली और गोबर के खाद की तुलना की गई तो खली का खाद उत्तम निकला। गोबर के खाद के रूप में एकसौ सेर ना० देने से जहां गुड़ की उपज ५२ मन प्रति एकड़ आई उतनी ही मात्रा तिल की खली के रूप में देकर देखी गई तो लगभग

---

[1] खलियों के वजन पहले वर्ष के हैं। दूसरे वर्षों में, संभव है, मूल्याधार पर डालने में मात्रा कुछ न्यूनाधिक हुई हो। गन्ने की उपज के अंक चार साल की औसत उपज है। Indian Council of Agricultural Research Bull. 41, 1941.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

८४ मन गुड़ आया। जब आधी ना० गोबर के खाद के रूप में और आधी खली के रूप में दी तो गुड़ की उपज ७४ मन आई।

सिंदेवाही में दस टन (२७२ मन) सन के ऊपर २५ सेर ना० खली के रूप में दी तो वह एमोनियम सलफेट के रूप में देने से अच्छी पाई गई। सिर्फ सन से जहां ५१ मन गुड़ प्रति एकड़ आया वहां सन और खली से ६७ मन और सन और एमोनियम सलफेट से ६२ मन गुड़ की उपज आई। सन और खली के साथ-साथ जब २२ सेर फा० पे० पहुंचे इतना सुपरफासफेट दिया गया तो उपज ७६ मन तक बढ़ी।

कृत्रिम खाद—इन खादों के भी कई प्रयोग हुए हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि एमोनियम सलफेट से सब जगह फायदा हुआ है। उत्तर प्रदेश के कई जिलों में गोबर के ऊपर ३० सेर ना०, ३० सेर फा० पे० और ३० सेर पो० आ० अलग-अलग अथवा दो या तीनों के मिश्रण के रूप में देकर देखा गया तो ना० से १० से ३० शतांश तक उपज बढ़ी। अकेले फा० और पो० का असर नहीं हुआ। फा० और ना० के मिश्रण की कहीं-कहीं आवश्यकता जंची। पो० की आवश्यकता नहीं मालूम हुई। शाहजहांपुर के प्रयोग भी यह बतलाते हैं कि गन्ने के लिए ना० के खाद की आवश्यकता है। इन प्रयोगों में ५० से लेकर १०० सेर ना० डाली गई थी। तीन साल की औसत उपज देखी जाय तो जहां बिना खाद के ४३२ मन उपज हुई वहां ५० सेर ना० से ७७० मन और १०० सेर ना० से ७७४ मन हुई। इन अंकों से ज्ञात होता है कि आर्थिक दृष्टि से ५० सेर ना० पहुंचे इतना ही खाद देना चाहिए। इससे कम कितनी मात्रा से काम चल सकता है इसके अङ्क नहीं हैं।

बिहार में सन के खाद के साथ-साथ २० सेर ना० पहुंचे इतना खाद उत्तर बिहार के लिए और ३० सेर ना० और पच्चीस सेर फा० पे० पहुंचे इतना खाद दक्षिण बिहार के लिए उत्तम होगा। इसके लिए १० मन खली उत्तर बिहार के लिए और १५ मन दक्षिण बिहार के लिए देना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहिए। फा० पे० के खाद के लिए हड्डी का चूरा या सुपरफासफेट फा० पे० की मात्रा पर गणना करके देना उचित होगा।

मद्रास के प्रयोगों में ७५ सेर ना० और बंबई की ओर सौ-डेढ़सौ सेर ना० की आवश्यकता पाई गई है।

मध्यप्रदेश के लिए दुबे[1] महोदय सन के खाद के सिवाय आठ मन एरंडी की खली और लगभग सवा मन नईसी फास अप्रैल में और उतना ही मई में देना अच्छा बतलाते हैं।

सन, खली और सुपरफासफेट के प्रयोग का फल जो सिंदेवाही फार्म का दिया है उससे ज्ञात होता है कि फा० की आवश्यकता मध्य प्रदेश में भी है।

कृत्रिम खादों में ना० के विना फा० के खाद की उपयोगिता बिहार और मध्यप्रदेश में नहीं सिद्ध हुई है। ना० के खाद के साथ इनका प्रयोग होना चाहिए। बीस-पच्चीस सेर फा० पे० पहुंचे इतना खाद देना चाहिए। पोटाश के खाद की आवश्यकता भारत में नहीं मालूम होती।

हेरफेर—जहां संभव हो वहां हरा खाद देना चाहिए. सो हेरफेर में हरे खाद की एक फसल तो आ ही जाती है। उसके बाद गन्ना लेने पर जो खूंटियां खेतों में रह जाती हैं उनसे फिर गन्ना लिया जाता है सो गन्ने के बाद दूसरा फसल गन्ना की ही रही। कहीं-कहीं तीसरी फसल भी लेते हैं परंतु एक रोप से दो फसलों से अधिक नहीं लेना चाहिए क्योंकि एक तो भूमि कमजोर हो जाती है और दूसरे व्याधियां बढ़ जाती हैं। गन्ने की दूसरी फसल के बाद खेतों को काफी जोतना पड़ता है और सफाई भी करनी होती है सो बरसात में खेतों की पड़त रखकर रबी की फसल लेनी चाहिए। उपर्युक्त वर्णन के आधार पर हेरफेर की रीति निम्न-लिखित होगी—

---

[1] हमारा ग्राम्य जीवन—पृष्ठ २०१।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहला साल	दूसरा साल	तीसरा साल
सन-गन्ना	गन्ना	पड़त-गेहूं
सन-गन्ना	गन्ना	उड़िद-गेहूं
मूंगफली-गन्ना	गन्ना	पड़त-गेहूं

अगर भूमि काफी हो तो गेहूं की फसल के बाद एक साल कपास भी ले लेना अच्छा होगा क्योंकि ऐसा करने से गन्ने और गन्ने के बीच में दो साल का पूरा अंतर हो जायगा।

कहीं-कहीं मिर्च या तंबाकू के खेतों में ही गन्ना लगा देते हैं। ज्योंही मिर्च या तंबाकू की फसल ली और गन्ना रोप दिया जाता है, ऐसी स्थिति में मिर्च या तंबाकू की फसल को खाद काफी देते हैं।

गन्ने के खेतों में पानी देनेवाली नालियों के बाजू पर धनियां, लहसुन इत्यादि उनके बोने के समय पर लगा देना चाहिए। ऐसा करने से कुछ आमदनी हो ही जाती है।

बीज और बोआई—गन्ने के बीज तो होते हैं परंतु उनसे गन्ना उस समय तैयार किया जाता है जब संकर-क्रिया द्वारा दो जातियों को संलग्न किया जाता है। साधारण खेतों में गन्ने के टुकड़े लगाए जाते हैं। खेतों में हल से नालियां बनाकर उनमें टुकड़े डालकरके मिट्टी से दबा दिये जाते हैं।

गन्ने की नंबरी जातियां—यद्यपि प्रांतीय कृषि-विभागवालों ने भी कुछ नंबरी जातियां ऐसी निकाली हैं जो स्थानीय भूमि या जलवायु के लिए अच्छी उपजाऊ सिद्ध हुई है परंतु अधिकांश भागों में केंद्रीय कृषि-विभाग की कोयम्बतूरवाली जातियां ही उपजाई जाती हैं। यहांपर कुछ मुख्य-मुख्य जातियों का संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है। जाति का चुनाव करने के पहले कृषकों को चाहिए कि स्थानीय कृषि-विभागवालों से सम्मति ले लें, क्योंकि संभव है किसी स्थान विशेष के लिए कोई खास जाति अच्छी सिद्ध हुई हो। आज से कुछ वर्ष पूर्व सी० ओ० २१० और सी० ओ० २१३ ने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी और इनका प्रचार बहुत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

था। उत्तर भारत में तो जहां देखो २१३ ही सुनाई देता था। परंतु १९३९-४० में जब लाली रोग (Red rot) गन्नों में जोरों का फैला तो इस गन्ने की प्रतिष्ठा कम हो गई।

भिन्न-भिन्न राज्यों में गन्ने की सुधरी हुई मुख्य-मुख्य जातियां—

आसाम—को. ४१९, को: २१३

उड़ीसा—को. ४२१, को. ४१९

उत्तर प्रदेश—को. ३१२, को. ४२१ को. ३१३, को. एस. २४५, को. एस. ३२१

पंजाब—को. ३१२, को. २८५, को. के. ३०

बंगाल—को. २१३, को. ३१३, को. ४२१

बंबई—को. ४१९, पी. ओ. जे. २८७८

बिहार—को. ३१३, को. ४५३, को: ५१३, बी० ओ० ११

मध्यप्रदेश—को. ३१२, को. ३१३, को. २९० को. ४१९

मद्रास—को. ४१९, को. ४४९, को. ५२७

मैसूर—को. ४१९

हैदराबाद—को. ४१९, को. २९०

बीज की मात्रा—जैसाकि पहले बतलाया गया है खेतों में बोने के लिए गन्ने के बीज नहीं बोये जाते बल्कि उसके टुकड़े बोये जाते हैं और उन्हींको बीज कहते हैं। गन्ने के बीज की मात्रा भूमि की उर्वरा-शक्ति और गन्ने की जाति पर निर्भर है। जो गन्ना कम दौंजी देनेवाला होता है उसे अधिक संख्या में बोना होता है। जब भूमि कमजोर होती है तो गन्ना दौंजी अधिक नहीं फेंकता इसलिए भी अधिक बोना होता है। जब खाद काफी दिया जाता है तो दौंजी अधिक फेंकी जाती है, इसलिए बीज कम बोना होता है। बोने के पहले गन्ने छीले जाते हैं ताकि उनकी आंखें खुल जायं और सूखे पत्ते हटा लिये जायं क्योंकि यदि पत्ते न हटाये जायं तो दीमक लगने का भय रहता है। छीलने के पश्चात् गन्ने के टुकड़े किये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाते हैं। साधारण टुकड़े फुट-डेढ़ फुट[1] लंबे रहने चाहिए। रोपने के लिए समूचे गन्ने भी दबाये जा सकते हैं परंतु ऐसा न करके टुकड़े लगाना अच्छा होता है। टुकड़े बोने में जिस गन्ने में लाली या पीलापन या अन्य प्रकार की व्याधि हो तो वह दिख जाती है और ऐसा व्याधि फैलानेवाला गन्ना अलग कर दिया जाता है। बीज के लिए गन्ने के ऊपरी भाग के टुकड़े अच्छे होते हैं परंतु फसल कुछ देरी से आती है। ऊपरी भाग में चीनी भी कम रहती है इसलिए जहांतक बन सके वहां ऊपरी भाग बोने के लिए और नीचे का भाग गुड़ या चीनी बनाने के काम में लाया जा सकता है। लेकिन यह वहां संभव है जहां बीज के लिए अपना ही खेत हो। जहां गन्ना मोल लेकर बोना होता है तो समूचा गन्ना ही खरीदना होता है। बोने के लिए ऐसा गन्ना नहीं खरीदना चाहिए जिसमें फूल निकल आये हों। इनकी संख्या गन्नों की लंबाई और रोपने की दूरी से की जा सकती है। गन्ने लगाने की दो रीतियां हैं। एक तो टुकड़े के छोर से टुकड़ा मिलाकर और दूसरा पहले टुकड़े की अंतिम आंख के साथ दूसरे टुकड़े की पहली आंख मिलाकर लगाना। अच्छी उपजाऊ भूमि में तो पहली रीति ही अच्छी होगी; क्योंकि उसमें बीज कम लगेगा। दूसरी रीति वहां अच्छी होगी जहां भूमि कमजोर हो और दीमक से गन्ने के टुकड़ों को हानि पहुंचने का भय विशेष हो।

एक और डेढ़ फुट लंबे प्रति एकड़ कितने टुकड़े लगेंगे उसकी

---

[1] प्रत्येक टुकड़े में तीन-चार आंख होनी चाहिए। अधिकांश जाति के गन्नों के बीच के भाग में आंख-से-आंख की दूरी लगभग चार इंच होती हैं सो एक फुटवाले में तीन आंख हो जायंगी। कुछ जातियां ऐसी भी हैं जिनमें आंख-से-आंख छः-सात इंच की दूरी पर भी रहती हैं। ऐसे गन्ने के टुकड़े डेढ़-डेढ़ फुट के ले सकते हैं ताकि प्रत्येक टुकड़े में तीन आंखें आ जायं। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि गन्ने के नीचे के भाग में आंखें नजदीक-नजदीक रहती हैं उसमें चार-पांच तक भी आ सकती हैं। इसी भांति गन्ने के ऊपरी भाग में भी आखें कुछ नजदीक होंगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गणना निम्नलिखित सारणी[1] में दी गई है।

रोपने की रीति	कतारों की दूरी फुटों में				
	१·५	२·०	२·५	३	४
छोर से छोर मिलाकर—					
टुकड़ा एक फुट	२९०४०	२१७८०	१७४२४	१४५२०	१०८९०
टुकड़ा डेढ़ फुट	१९३६०	१४५२०	११६१७	९६००	७२६०
आंख से आंख मिलाकर—					
टुकड़ा एक फुट	३८७२०	२९०४०	२३२३२	१९३६०	१४५२०
टुकड़ा डेढ़ फुट	२९०२०	२१७८०	१७४२४	१४५२०	१०८९०

उपर्युक्त अंक गणना से निकाले हैं। चूंकि सब टुकड़े स्वस्थ नहीं होते, इसीलिए उपर्युक्त अंक में चार-पांच शतांश और मिला लेना चाहिए। इस हिसाब से देखा जाय तो आंख से आंख मिलाकर रोपनेवाले एक फुट के टुकड़े कतारों की दूरी के अनुसार लगभग चालीस, तीस, पच्चीस, बीस और पंद्रह हजार होंगे। यदि छोर से छोर मिलाकर लगाये जायं तो लगभग तीस, बाईस, अठारह, पंद्रह और ग्यारह हजार टुकड़े होंगे।

उपर्युक्त संख्या में यदि हम गन्ने की लंबाई का भाग दे दें तो गन्ने

---

[1] गणना का सूत्रः—जहां छोर से छोर मिलाकर लगाते हैं—

४३५६२ ÷

गन्ने के टुकड़े की लंबाई फुट में × कतारों की दूरी फुट में =

टुकड़े प्रति एकड़।

जहां आंख से आंख मिलाकर लगाते हैं—

४३५६२ ÷

टुकड़े की पहली आंख से अंतिम × कतारों की दूरी फुट में आंख तक की दूरी फुट में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रति एकड़ निकल आवेंगे। मानलो हमारा बीजवाला गन्ना ६ फुट का है और ढाई फुट की दूरी पर लगाने के लिए पच्चीस हजार टुकड़े चाहिए तो बीज के लिए कुल गन्ने लगभग चार हजार चाहिए। जहां छोर से छोर मिलाकर लगाना होगा वहां उतनी ही दूरी के लिए तीन हजार गन्ने पर्याप्त होंगे।

बीज का गन्ना गिनती के सिवाय वजन से भी मिलता है और चूंकि गन्ने का वजन उसकी जाति और आयु के अनुसार कम-ज्यादा होता है; कुछ गन्नों का वजन करके आवश्यक गन्नों की संख्या पर वजन की गणना कर लेनी चाहिए। साधारणतः पतली जाति के गन्ने यदि ढाई फुट की दूरी पर लगाये जायं तो पचास-साठ मन लग जायंगे। मोटी जाति के गन्ने का वजन ड्योढ़ा लिया जा सकता है। परंतु चूंकि वे अधिक दूरी पर लगाये जाते हैं उपर्युक्त वजन से सवाया वजन प्रति एकड़ गिन लेना चाहिए। यदि अपने ही खेत से बीज लेना हो और क्षेत्रफल का अंदाज लगाना हो, तो एक एकड़ से दस एकड़ के लिए बीज मिल जायगा ऐसा गिनना चाहिए।

गन्ना लगाने की रीति—एक निर्धारित दूरी पर हल से नालियां खोद दी जाती हैं और उनमें मजदूर लोग गन्ने के टुकड़े डाल देते हैं; जिन्हें दूसरे मजदूर छोर-से-छोर मिलाकर या आंख-से-आंख मिलाकर जिस रीति से लगाना हो जमा कर रख देते हैं। इन टुकड़ों को रखा भी इस तरह से जाता है कि उनकी आंखें बाजू में रहें अर्थात् ऊपर नीचे की ओर न रहें। इस प्रकार रख देने के बाद उन्हें ढंक दिया जाता है। ढंकने के लिए एक ऐसा यंत्र होता है जिसका वर्णन जुताई के प्रकरण में दिया गया है। इस प्रकार जो गन्ना लगाया जाता है वह तरीवाली भूमि में लगाते हैं। तरी चाहे स्वाभाविक हो अथवा सिंचाई द्वारा प्राप्त की हुई, उसी तरी से गन्ने की कोंपल निकल आती हैं।

दूसरी रीति यह है कि गन्ने के टुकड़े हल से खोली हुई नाली के बाजू पर डाल देते हैं और नालियां पानी से भरकर उनमें गन्ना दबाते जाते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। एक व्यक्ति गन्ने के टुकड़े का एक छोर पांव के अगले हिस्से से दबाकर दूसरा छोर दूसरे पांव की एड़ी से दबाता है। दबाते समय वह इस बात का ध्यान रखता है कि आंखें बाजू पर रहें। टुकड़े दबाये भी इतने जाते हैं कि उनपर सिर्फ एक इंच मिट्टी चढ़े।

पहली रीति में यदि खेत में तरी काफी न रहे तो अंकुर अच्छे नहीं निकलते। दूसरी रीति में तरी काफी रहती है जिससे अंकुर अच्छे फेंके जाते हैं। इसके सिवाय इस रीति में एक लाभ यह होता है कि टुकड़े दबाने के लिए दूसरे मजदूर और यंत्र की आवश्यकता नहीं होती।

कहीं-कहीं ऐसा भी किया जाता है कि गन्नों के टुकड़ों को रोपने के पहले एक-दो रोज के लिए पानी[1] में डाल देते हैं। ऐसा करके देखा गया तो उपज में लाभ ही हुआ, क्योंकि आंख में तरी भर जाती है और गन्ने में भी काफी पानी भर जाता है जिससे अंकुर अच्छे फेंके जाते हैं। बहुधा गन्ने ही छोटे-मोटे हौंज या पोखर में डाल देते हैं और बाद में टुकड़े कर लेते हैं।

पंजाब की ओर, जहां पाले से आंखों को हानि पहुंचने का भय हो वहां गन्ने के ऊपरी टुकड़े मिट्टी में गाड़कर रख लेते हैं और जब पाले का भय माघ (जनवरी) में निकल जाता है तब खेतों में लगा देते हैं।

जहां दीमक का विशेष भय हो वहां गन्नों के टुकड़ों के छोर तार-कोल के पानी में डुबोकर लगाने चाहिए। इसका विशेष वर्णन गन्ने के शत्रुवाले स्तंभ में आगे दिया है।

नालियों की दूरी—गन्ने की कतारें कितनी दूरी पर हों यह उनकी जाति और भूमि के स्वाभाविक उर्वरापन अथवा खाद के ऊपर निर्भर है। जिस जाति के गन्नों में दौंजी (Tillering) अधिक फेंकने की शक्ति हो

---

[1] सादे पानी की अपेक्षा यदि चूने के पानी में भिगोकर बोये जायं तो और भी लाभ होगा।

Facts about sugar Dec. 1935.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनकी कतारें दूरी पर रहनी चाहिए। जब भूमि की स्वाभाविक उर्वरा-शक्ति अच्छी हो तो उसमें भी गन्ने अधिक दौंजी फेंकते हैं तो वहां की कतारों की दूरी बढ़ाई जा सकती है। खाद से भी उर्वराशक्ति बढ़ती ही है सो जिस भूमि में खाद काफी दिया हो उसमें भी कतारों की दूरी अधिक की जा सकती है।

शाहजहांपुर के निम्नलिखित प्रयोगात्मक उदाहरणों से उपर्युक्त कथन का स्पष्टीकरण अच्छा होगा।

जिस भूमि में खाद नहीं दिया गया उसमें डेढ़ फुट की दूरी पर कतारें लगाने से उपज ७९५ मन हुई तो ढाई फुट के अंतर पर लगाने से ७१६ मन और साढ़े तीन फुट पर कतारें रखने से ६७७ मन तक गिर गई।

जिस भूमि में २५ सेर ना० पहुंचे इतना खाद एरंडी की खली का दिया गया तो उपर्युक्त अंक क्रमशः ८७५, ८५० और ८४८ मन आये। जब खाद की मात्रा ५० सेर ना० तक बढ़ा दी गई तो उपज ८९३, ९३८ और ९५० मन पड़ी। इसी प्रयोग में १०० सेर ना० देकर भी देखा गया था परंतु चूंकि नतीजा ५० सेर ना० के समान ही रहा; इसलिए उसके अंक यहां देना निरर्थक[1] ही है।

इन प्रयोगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हमारे कृषक जो डेढ़ फुट की दूरी पर भी कतारें लगाते हैं उचित ही करते हैं क्योंकि बिना खाद या कम खाद से उपजाने के लिए यही दूरी अच्छी है। यदि आवश्यकता से अधिक दूरी रखी जाय तो खाली जगह रहने से जोरों की हवा में कमजोर गन्ने गिर पड़ेंगे; यदि जगह कम रही तो एक दूसरे के सहारे खड़े रहेंगे। जहां काफी खाद दिया जाता है वहां निम्नलिखित दूरी उत्तम होगी।

कमजोर भूमि में पतली जाति के गन्नों के लिए कतारें डेढ़ से दो

---

[1] इंडियन कॉउंसिल ऑफ एग्रीकलचरल रिसर्च, मिसलेनियस बुलेटिन नं० ४१, पृष्ठ ४९। १९४१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फुट दूरी पर रखनी चाहिए और अच्छी उपजाऊ भूमि में ढाई फुट तक बढ़ा देनी चाहिए। मध्यम श्रेणी के गन्ने के लिए ढाई-तीन फुट और मोटे गन्ने के लिए तीन फुट से साढ़े तीन फुट तक कतारों की दूरी रखना उत्तम होगा।

गन्ना लगाने का समय--भारत के विभिन्न स्थानों में रोपने के समय के जो प्रयोग हुए हैं उनके आधार पर यही कहा जा सकता है कि उत्तर-भारत में माघ, फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) में रोपना अच्छा होता है। जहां पाले का भय हो, जैसाकि पंजाब में रहता है, तो वहां फाल्गुन-चैत्र (फरवरी-मार्च) तक लगाना चाहिए। दूसरी जगह समय न मिलने से चैत्र तक भी लगा सकते हैं; परंतु माघ में लगाये जानेवाले गन्नों से उपज अच्छी होती है। दक्षिण भारत में रोपने का समय कुछ अधिक लंबा है। माघ-फाल्गुन से वैशाख तक लगा सकते हैं। कहीं-कहीं तो पौष में भी लगा देते हैं। वैसे आश्विन-कार्तिक में भी लगाकर देखा गया तो उपज तो कुछ बढ़ी परंतु खेत में फसल को पंद्रह महीने रखना पड़ा।

रखत पेड़ी या खूंटी गन्ना--गन्ना काट लेने पर जो खूंटियां जमीन में रह जाती हैं उनसे दूसरी फसल भी लेते हैं। ऐसा करने से बीज की बचत हो जाती है और उपज भी अच्छी ही आती है। ऐसा गन्ना पकता भी जल्दी है।

खूंटी से फसल लेने के लिए ज्योंही पहला गन्ना काट लिया जाता है कि खेत में आग लगा देते हैं ताकि पत्ते वगैरह जल जायं। जलाने से कई लाभ हैं, जिनमें का सबसे अधिक लाभ गन्ने के शत्रु-कीड़ों का मर जाना है। ऐसा करते समय खूब ध्यान रखना चाहिए के यदि पास के खेत में गन्ना खड़ा हो तो उसमें आग न लग जाय। गन्ने के खेत कांटों से घेरे जाते हैं सो उसमें आग [1] लग जाया करती है। निम्नलिखित [2] साव-

---

[1] लेखक के निज के खेत के घेरे में एक कृषक की असावधानी से ऐसी आग लग गई थी।

[2] गुरु राजा राव १९४७। 'गन्ने की खेती' पृष्ठ ७८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धानी से यदि कार्य लिया जाय तो आग से हानि का भय नहीं रहेगा।

जिस खेत का गन्ना कट गया हो उसके चारों ओर से दस-दस फुट तक के पत्ते चुनकर खेत के अंदर की ओर हटा लिये जायं। जहां सुविधा हो वहां चारों ओर पानी की नाली भी भरकर रख लेनी चाहिए। जहां नहर से सिंचाई होती है वहां नालियों में पानी भर देना आसान होगा। आवश्यकता पड़ने पर ऐसे पानी से आग बुझाई जा सकती है।

आग से जलाने के पश्चात् आधे जले हुए या नहीं जले हुए टुकड़ों को खेतों से हटा लेना चाहिए वरना दीमक के लगने का भय रहेगा। बाद में पानी दे देना चाहिए। जब कोंपलें निकलने लग जायं तो बीच की भूमि में हल चला देना चाहिए। वर्षारंभ के समय एरंडी की खली का खाद १५ मन के लगभग दे देना चाहिए। खूंटीवाले गन्ने की सिंचाई और देखभाल वैसी ही होनी चाहिए जैसी नये गन्ने की होती है।

रखत, पेड़ी, दौंजी, (Ratoon)—गन्ने की पहली फसल काटने के बाद जो खूंटियां रह जाती हैं उनमें से नये कोंपल फूट आते हैं और एक फसल और बिना वोये ही ली जा सकती है। कहीं-कहीं तीसरी फसल भी लेते हैं परंतु ऐसा करने में एक तो व्याधियां बहुत बढ़ जाती हैं और भूमि कमजोर हो जाती है।

निंदाई और देखभाल—गन्नों के खेतों में लगाने के समय से जब-तक बरसात में पौधे बड़े नहीं हो जाते प्रतिमास एक-दो निंदाई खर-पतवार निकालने और प्रत्येक सिंचाई के बाद जमीन की पपड़ी तोड़ने के लिए करनी पड़ती है। यह कार्य पहले खुर्पी से और बाद में भारी कड़पे से किया जाता है। बरसात तक कड़पा पांच-छः बार चलाना होगा। बाद में बरसात में तो गन्ने के पौधे इतने बड़े हो जाते हैं कि घासपात जमने ही नहीं पाते। वर्षारंभ के कुछ पहले गन्नों पर मिट्टी चढ़ाने की क्रिया की ओर ध्यान देना चाहिए। ऐसा करने से गन्नों की जमावट अच्छी हो जाती है और वे गिरने नहीं पाते। जो गन्ने गिर जाते हैं उन-पर गठानों की जगह जड़ें निकल आती हैं जिससे रस तथा गुड़ कम बैठता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। गिरे हुए गन्नों में दीमक तथा अन्य कीट भी विशेष हानि पहुंचाते हैं। मिट्टी चढ़ाते समय कृत्रिम या खलियों का खाद भी दे देना चाहिए। मिट्टी चढ़ाने के लिए क्षेत्रफल कम हो तो फावड़े से काम लिया जा सकता है। परंतु जहां क्षेत्रफल अधिक होता है वहां तो गन्नों की कतारों में हल चलाना उत्तम होगा। इसके लिए मिट्टी चढ़ानेवाला अंग्रेज़ी हल अच्छा होगा। उसके अभाव में देशी हल के धड़ और डंडी के बीच में एक तख्त लगाकर भी काम लिया जा सकता है।

इतने पर भी यदि गन्ने गिरते नजर आयें तो उन्हें इकट्ठे करके बांध देना चाहिए। गन्ने के पत्तों से ही बांधे जा सकते हैं।

बन सके तो गन्ने की पांच महीने की आयु के बाद यदि नई दौंजियां निकलें तो उन्हें तोड़ देना चाहिए। क्योंकि ये समय पर पकेंगी नहीं और खाद बेकार खा जायगी।

गन्ने के खेत में कभी-कभी घातक पौधा 'आगिया' लग जाता है; सो निंदाई के समय उसे नष्ट करने की ओर ध्यान रखना चाहिए।

सिंचाई—भारतवर्ष में उत्तर बिहार-जैसे कुछ ही स्थान ऐसे हैं जहां बिना सिंचाई के गन्ने की खेती हो सकती है। वहां भी यदि वर्षा जून (आषाढ़) में देरी से हुई हो तो सिंचाई से कुछ लाभ हो जाता है। अन्य स्थानों में सिंचाई का प्रश्न बड़े महत्व का है। गर्मी के दिनों की सिंचाई से गन्ने की उपज ही अधिक नहीं होती; बल्कि गन्ने में चीनी (Sucrose) भी अधिक मिलती है, गुड़ भी अच्छा बनता है और गन्नों में रेशा (Fibre) कम पड़ता है।

अधिकांश भागों में गन्ना माघ-फाल्गुन में बोया जाता है और वर्षा आषाढ़ में आती है सो उस समय तक सींचना पड़ता है। गन्ने की फसल गर्मी में धीरे-धीरे बढ़ती है और बरसात में बाढ़ जोरों की होती है। यदि गर्मी की सिंचाई द्वारा पौधे स्वस्थ रखे जायं तो वे वर्षा में और भी अधिक बढ़ते हैं। ऐसी सिंचाई जमीन की तथा वातावरण की तरी पर निर्भर है। यदि भूमि में तरी न रही तो पहली सिंचाई तरी लाने के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिए करनी होती है, अथवा यदि नालियों में पानी भरकर गन्ने दबाये जायं तो वह पहली सिंचाई होगी। गन्ना जबतक एक महीने का होता है एक सिंचाई और देनी होगी। दूसरे महीने में दो और तीसरे एवं चौथे महीने तक देनी होगी। पांचवें महीने में एक या दो सिंचाई देते-देते पानी आ ही जायगा। उसके बाद मार्गशीर्ष और पौष (नवंबर-दिसंबर) में एक-एक सिंचाई देना उत्तम होगा; ताकि गन्ने में तरी अच्छी रहे। उधर जबतक मिल में माल न पहुंच जाय अथवा गुड़ बनाने में विलंब हो जाय तो आवश्यकतानुसार सींचना होगा।

इससे एक लाभ यह भी होता है कि सिंचाई से बांड और पत्ते हरे रहते हैं और उनके लालच से गन्ने काटने और छीलनेवाले मजदूर मिल जाते हैं क्योंकि मजदूर लोग पशुओं को खिलाने के लिए पत्ते ले जाते हैं।

स्मरण रहे कि पतले गन्नों की अपेक्षा मोटे गन्नों को पानी अधिक देना होता है।

चूंकि बातावरण की तरी और भूमि की तरी पर भी सिंचाई की क्रिया निर्भर है; मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि उत्तर भारत में बंगाल और बिहार के कुछ भागों में गन्ना बिना सिंचाई के हो जायगा।

उसके बाद ज्यों-ज्यों पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ते जायंगे, सिंचाई की संख्या बढ़ती जायगी। पूर्वीय उत्तर प्रदेश में गर्मी के दिनों में कुल तीन सिंचाई से लेकर पंजाब में आठ-दस सिंचाई देनी होंगी। उसी भांति मध्य प्रदेश में भी गन्ना रोपने के समय से बरसात तक नौ-दस सिंचाई लग जायंगी। दक्षिण भारत[1] में भी साधारणतः आठ-दस सिंचाई और कहीं-कहीं गर्मी के दिनों में तो दस-दस दिन पर भी सिंचाई करनी होती है। प्रत्येक बार की सिंचाई में लगभग तीन इंच पानी देना चाहिए।

---

[1] रेगे महोदय के पाडेगांव के प्रयोगानुसार गन्ने के लिए १०० से १२० इंच पानी (जिसमें बरसात का पानी भी शरीक है) देना उत्तम होता है। इससे अधिक देने से उपज कम ही हो जाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपर्युक्त सिंचाई की संख्या के सिवाय बरसात के बाद और गन्ना काटने के पहले भी दो-तीन सिंचाई देनी होगी।

गन्ने के शत्रु—पशु, कीट और व्याधियां।

पशु—गन्ने को पशुओं में सूअर, गीदड़, हिरन, नील गाय इत्यादि जंगली जानवरों से, और यदि ठीक से घेरा न लगाया जाय तो पालतू पशुओं से भी हानि पहुंचती है। ग्रीष्म-ऋतु में जब हरा चारा नहीं मिलता तो उपर्युक्त पशु आक्रमण करते हैं। इनसे बचाने के लिए जब क्षेत्रफल थोड़ा हो तो खेतों के चारों ओर कांटे का घेरा लगाना चाहिए। जहां क्षेत्रफल अधिक हो वहां कृपकों की सम्पन्नतानुसार जालीदार या कांटेदार तार का घेरा लगाना उचित होगा। इसके सिवाय रखवाला भी रखना ही होता है।

कीट दीमक—जब गन्ने के टुकड़े बोये जाते हैं तब इनसे बहुत हानि होती है। पहले तो यह टुकड़ों के कटे हुए छोर की तरफ से आक्रमण करती है; और बाद में उनकी आंखें भी खा जाती हैं। बहुधा अंकुरित पौधे भी इसके आक्रमण से सूख जाते हैं। जब एक बार अंकुरित होकर पौधे ठीक से जम जाते हैं तब इनकी दाल नहीं गलती। गन्नों के टुकड़ों पर सूखे पत्ते रहने से भी दीमक का आक्रनण अधिक हो जाता है; सो जब टुकड़े खेतों में दबाये जायं तो उन्हें पत्तेरहित करके ही लगाना चाहिए। जिन खेतों में सन का हरा खाद दिया हुआ हो और वह ठीक से सड़ा हुआ न हो तो उसमें भी दीमक काफी हानि पहुंचाती है। दीमक से बचाने के लिए जहां-जहां दीमक लगने का अधिक भय हो वहां-वहां बीजवाले टुकड़ों को लेड आर्सिनेट (Lead arsenate) नाम की औषधि में डुबोकर साया में सुखा करके बोया जाय तो बहुत हद तक बचाव हो जाता है। दस सेर पानी में आधा सेर औषधि घोलनी चाहिए।

इस औषधि के सिवाय तारकोल (अलकतरा Tarcoal) का पानी भी अच्छा होता है। जहां वह प्राप्त किया जा सके काम में लाना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दस सेर उबलते हुए पानी में दस बूंद तारकोल डालकर उसे खूब मिला देना चाहिए।

नीम की खली[१] का खाद भी इस कीट से बचाने के लिए अच्छा होता है। बोने के पहले यानी गन्ना लगाते समय लगभग २० मन खली प्रति एकड़ खेतों में दे देनी चाहिए।

गन्ने में छेद करनेवाले कीट—ऐसे कीट तीन प्रकार के हैं। एक वे जो गन्ने के ऊपरी भाग में छेद कर देते हैं, दूसरे जो धड़ में छेद करते हैं और तीसरे वे जो गन्ने की जड़ में छेद करते हैं। ये तीनों कीट पतंग की जाति के हैं। इनकी मादाएं पौधों पर अंडे देती हैं; जिनसे बालकीट निकलकर पौधों पर आक्रमण करते हैं। इनमें छेद करके अंदर घुस जाते हैं और गन्नों को खराब कर देते हैं।

पहले कीट से बचाने के लिए गन्ना कुछ जल्दी बोना चाहिए; ताकि अगले आषाढ़-श्रावण (जुलाई) तक पौधे ऐसे मजबूत हो जायं कि कीट आक्रमण न कर सकें। यह भी देखा गया है कि जिन खेतों में सुपर फासफेट का खाद दिया जाता है उनमें भी इससे कम हानि होती है। जिन गन्नों में यह कीट लग जाता है उनमें से जहां यह छेद करता है; उसके ऊपरी भाग से दौजियां निकल आती हैं। यदि गन्नों में ऐसी दौजियां हों, तो जहां से वह फूटी हों उस स्थान के कुछ नीचे से गन्ने को काट कर नष्ट कर देना चाहिए ताकि कीट मर जाय। धड़-छेदक कीट जिन गन्नों में लग जाते हैं वह उन्हें खराब कर देते हैं और जिनमें जड़-छेदक लग जाता है वे तो ऊपर से सूखने लग जाते हैं; क्योंकि उनका पोषण ठीक से नहीं हो पाता।

धड़छेदक कीट से बचने का एक उपाय यह है कि इस कीट के ट्रायकोग्रामा (Trichogrammaminutum) नाम के कीट होते हैं जो इन कीट के अंडों में अपने अंडे दे देते हैं। ट्रायकोग्रामा कीट के बाल-कीट का

---

[१] I. C. A. R. Bul. No. 34 P. 36

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पोषण अंडों पर ही होता है और धड़-छेदक कीट के अंडों में से उनके कीट न निकलकर ट्रायकोग्रामा निकल पड़ते हैं। ऐसे घातक कीट कीट-विज्ञानी पाल कर रखते हैं[1]

गन्ने की मक्खी (Sugarcane Fly)—इस कीट के बाल-कीट और तरुण-कीट दोनों ही पौधों का रस चूसकर उन्हे बलहीन कर देते हैं। मादा पत्तों पर अंडे देती है जो रुई जैसे सफेद पदार्थ से ढके रहते हैं। जहां ऐसा पदार्थ दीखे, समझना चाहिए कि वहां इस कीट के अंडे हैं और उन्हें नष्ट कर देना चाहिए।

पायरेला (Pyrella)—ये खटमल की जाति के भूरे रंग के छोटे कीट होते हैं जो पत्तों में छिपे रहते हैं। ये पत्तों का रस चूसकर उन्हें कुम्हला देते हैं। इससे पौधे बलहीन हो जाते हैं और चीनी या गुड़ कम बैठता है। जब आक्रमण बहुत हो तो गन्ने के धड़ पर के पत्ते छील देने से कुछ बचाव हो जाता है। थोड़े आक्रमण में पत्ते नहीं छीलना चाहिए, क्योंकि कुछ पत्ते छीलने से भी पौधों को हानि पहुंचती है। इस कीट का आक्रमण पांच-सात साल के अंतर पर जोरों का हो जाता है।

व्याधियां—घातक पौधे—आगिया[2] नाम का सफेद फूलवाला छोटा-सा पौधा लग जाता है जो गन्ने की जड़ों से रस खींचकर अपना पोषण करता है और गन्नों को बहुत कमजोर कर देता है। निंदाई के समय फ्लेम थ्रोअर से इसे जला देना चाहिए।

फफूंदवाली व्याधियां—मोजेक (Mosaic) इस व्याधि में हरे रंग की जगह पत्तों में कुछ पीला रंग आ जाता है। यह व्याधि प्रायः सब

---

[1] इंडियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के कीट-विभाग से ऐसे कीट प्राप्त किये जा सकते हैं। आवश्यकता के समय एक प्रमाणित संख्या में ये कीट गन्ने के खेतों में छोड़े जाते हैं।

[2] ज्वार में यह पौधा बहुत हानि पहुंचाता है, इसलिए इसका विशेष वर्णन ज्वार के वर्णन में दिया गया है। गन्नों की खेती पृष्ठ १०५।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जगह पाई जाती है। इसका कोई इलाज नहीं है और न उपज में कोई घाटा ही होता है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि व्याधि-रहित गन्ने के टुकड़े लगाने के लिए काम में लाये जायं।

दूसरी व्याधि लाल रंग (Red rot) की होती है। जब यह व्याधि बहुत फैल जाती है तो गन्ने के अंदर लाल रंग के धब्बे हो जाते हैं और गन्ने में रस बहुत कम हो जाता है। सन् १९३९-४० में उत्तर भारत में यह व्याधि को. २१३ में ऐसी फैली कि उस समय के प्रसिद्ध को. २१३ का बोना ही बंद करना पड़ा; और ३१२, ३१३ और ४२१ को स्थान देना पड़ा।

गन्ने के जिस भाग पर यह व्याधि हो जाती है वहां का मिठास तो बिल्कुल ही नष्ट हो जाता है। बोते समय जब टुकड़े मिट्टी में दबाये जायं तो व्याधि-रहित टुकड़े काम में लाने चाहिए। जिन टुकड़ों के गूदे में लाल या सफेद धब्बे दिखाई दें उन्हें काम में नहीं लाना चाहिए।

गन्ने की तीसरी व्याधि कायमैं (Smut) वाली होती है। इसमें सबसे ऊपरवाला पत्ता चाबुक-सा निकलता है और उसके अंदर काला बुरादा भरा रहता है। व्याधि अधिक फैलने न पाये; इसलिए जिस समय ऐसा चाबुक-सा भाग निकला हुआ नजर आये; उसी समय उस गन्ने को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। १ शतांश फार्मेलिन में डुबोकर यदि टुकड़े दो घंटे तक कपड़े या बोरों के नीचे दबाकर बोये जायं तो यह व्याधि नहीं होती है।

चौथी व्याधि विल्ट की होती है जिससे गन्ना सूख जाता है और अंदर का गूदा भूरे रंग का हो जाता है। इसका कोई इलाज नहीं है।

इनके सिवाय पत्तों पर होनेवाली व्याधियों में हरदा (Rust), रिंग स्पॉट (Ring spot), ब्लेक रॉट (Black rot), कॉलर रॉट (Collor rot) इत्यादि और भी व्याधियां हैं; परंतु ये ऐसी नहीं होतीं जिनके लिए विशेष उपचार किये जायं।

सूक्ष्म जंतु (Bacteria) वाली व्याधि में Stinking rot नाम की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याधि होती है। इसके लग जाने से पौधा मुर्झाने लगता है और अंत में सड़ जाता है। धड़-छेदक कीट द्वारा किये हुए छेद में सूक्ष्म-जंतु घुस कर आक्रमरण करते हैं।

फसल की तैयारी और उपज—गन्ने की फसल उत्तर भारत में जाति के अनुसार तथा स्थानानुसार दीपावली के समय से तैयार होने लगती है परंतु गन्ना पीलने का कार्य पौष (दिसंबर) से ही आरंभ होता है और चैत्र (अप्रैल) तक कहीं-कहीं चलता रहता है। जैसाकि नीचे की सारिणी से ज्ञात होगा, दक्षिण भारत में ज्येष्ठ (मई) तक भी यह कार्य चलता रहता है।

गन्ने की कटाई का अनुमान[1] शतांश में—

प्रांत	भाद्रपद-आश्विन (अगस्त सितंबर)	कार्तिक-मार्गशीर्ष (अक्तूबर नवंबर)	पौष-माघ (दिसंबर जनवरी)	फाल्गुन-चैत्र (फरवरी मार्च)	वशाख-ज्येष्ठ (अप्रैल मई)	आषाढ़-श्रावण (जून जुलाई)
उत्तर प्रदेश	१%	१२%	३९%	४०%	८%	—
विहार	—	८%	३९%	४५%	८%	—
वंगाल	—	१२%	६२%	२६%	—	—
पंजाव	६%	१६%	४०%	३१%	७%	—
मद्रास	२%	२७%	२५%	३५%	१०%	१%
वंवई	१%	१३%	३४%	३५%	१६%	१%
हैदरावाद	—	६%	३९%	५०%	५%	—
मैसूर	१२%	३०%	१६%	२७%	१४%	१%

उपर्युक्त सारणी से ज्ञात होगा कि उत्तरभारत में गन्ने की कटाई कार्तिक से प्रारंभ हो जाती है; परंतु जोरों का काम पौष से चैत्र तक रहता है। दक्षिण भारत में भी कटाई कार्तिक से प्रारंभ हो जाती है;

[1] गन्ने की व्यावसायिक रिपोर्ट १९४३, पृष्ठ ३६.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परंतु उधर दो-एक महीना अधिक तक कटती रहती है। अर्थात् उत्तर-भारत में जहां जोरों का काम चार महीना चलता है, दक्षिण भारत में लगभग छः महीने अच्छा काम चलता है।

गन्ने के पकने की पहचान—जहां प्रयोगशालाएं निकट होती हैं, जैसाकि चीनी के कारखानों के पास होता है; वहां कुछ गन्ना पील कर उसमें शुद्ध चीनी (Sucrose) की मात्रा जांच लेते हैं। जब यह मात्रा चौदह-पंद्रह शतांश तक गन्ने के रस में पहुंच जाती है तब गन्ना काटने योग्य माना जाता है। अच्छे पके हुए गन्ने में यह तेईस-चौबीस शतांश तक भी पहुंच जाती है। स्मरण रहे कि उपर्युक्त मात्रा गन्नों की जाति पर भी निर्भर है।

जहां प्रयोगशालाओं की सुविधा नहीं होती; वहां कृषक गन्नों के रूप-रंग, मिठास उनके टूटने की रीति इत्यादि से पहचान करते हैं। साधारणतः जब पत्ते पीले पड़ जाते हैं और बाढ़ रुक जाती है; तब गन्ना पका हुआ माना जाता है। गन्ना चूसकर भी देखा जाता है। जब मिठास काफी आ जाता है तो कटाई आरंभ कर देते हैं। इसके सिवाय पका हुआ गन्ना खेत में से तोड़ा जाता है तो वह जल्दी टूट जाता है और उसका छिलका कठोर हो जाता है। पके हुए गन्ने के दो टुकड़ों को आपस में ठोककर बजाया जाय तो पक्की आवाज होती है। गन्ने की आंख की बाढ़ से भी पकने की पहचान की जाती है। जब गन्ने की बाढ़ रुक जाती है तो कुछ आंखें फूटने लगती हैं; जिससे ज्ञात होता है कि गन्ना पक गया।

शिक्षित कृषक "ब्रिक्स हाइड्रोमीटर" नाम के यंत्र से भी पहचान सकते हैं। गन्ने के रस में जब यह यंत्र छोड़ा जाय तो कुछ डूबता है और शेष रस के ऊपर रहता है। ऊपरवाले में कुछ अंक रहते हैं। रस की सतह के बराबरवाले अंक यह बतलाते हैं कि इसमें घुनलशील पदार्थ किस शतांश में है। जब यह सतह १८° से २०° पर रहे; तो समझना चाहिए कि गन्ना पक गया। इन अंकों के साथ-साथ तापमान का भी विचार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करना होता है; परंतु मोटे तौर पर जांच के लिए उसकी आवश्यकता नहीं।

गन्ने के ऊपर-नीचे के भाग में चीनी की निष्पत्ति—जो गन्ना कच्चा रहता है उसके नीचे के भाग के रस में चीनी अधिक रहती है और ऊपर के भाग में कम। जब ऊपर-नीचे के भागों के रस में चीनी की मात्रा करीब बराबर आ जाय तो समझना चाहिए कि गन्ना पक गया।

गन्ने की कटाई—जो गन्ना चूसनेवाला होता है, उसे जड़ के निकट से काटकर कुछ पत्ते छील दिये जाते हैं और सिर नहीं काटा जाता। सिर उसी समय काटते हैं जब गन्ना बिकता है। गन्ना साधारणतः हंसुए से काटा जाता है; परंतु कोदाल-जैसा तेज यंत्र रहे तो खड़े-खड़े काटने में बड़ी आसानी रहती है। ऐसे यंत्र से झरिया बेर की झाड़ियां काटते हुए कृषकों को लेखक ने दिल्ली के आस-पास देखा है।

जहां गन्ना रस के लिए बिकता है वहां उसका सिर काट देना ही अच्छा है, क्योंकि गन्ने के साथ-साथ सिर का बेकार वजन नहीं ढोना पड़ता। पत्ते छीलने के लिए ऐसे गन्नों के पत्ते हंसुए से छीले जा सकते हैं। बीज वाले गन्ने काटते समय इस बात का ध्यान रहे कि यंत्र साफ हो। ऐसा न हो कि उनसे व्याधिवाले गन्ने कटे हुए हों। खेत भी पहले देख लेना चाहिए कि उसमें कोई व्याधि तो नहीं है। काटने के पश्चात् उनके पत्ते इस तरह से छुड़ाने चाहिए कि जिसमें गन्ने की आंखें नष्ट न हों; क्योंकि भावी पौधे का निकलना और स्वस्थ रहना उन्हींकी अखंडता पर निर्भर है।

गुड़ के लिए जो गन्ना काटा जाता है उसे हंसुए से छील सकते हैं ताकि आसानी से छिल जाय। ऐसा गन्ना सिर्फ इतना ही काटना चाहिए जिससे काटने के बाद चौबीस घंटे के अंदर पीला जा सके; क्योंकि काटने के पश्चात् जितना देरी से पीला जायगा उतना ही गुड़ कम बैठेगा। यदि गन्ना दूर से लाना हो अथवा चरखी के बिगड़ जाने से पीलने का कार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रुक जाय; तो गन्नों पर कुछ पानी छींटकर उन्हें पत्तों से ढककर रखना चाहिए।

चीनी के लिए जो गन्ना काटा जाता है वह छिलछिलाकर गाड़ियों में भरकर कृषक स्वयं मिलों तक पहुंचा देते हैं; जहां गाड़ियां बैलसहित तुल जाती हैं और लौटकर खाली गाड़ी का वजन करके उतना वजन काट दिया जाता है। जहां की मिलें छोटी हों अथवा जहां समूची गाड़ी के तोल की सुविधा न हो; वहां गन्नों की छोटी-छोटी भारियां बनानी होती है, जिन्हें देशी कांटों पर तोलना होता है। तोलने के पश्चात् भारी बांधने की वस्तु जो बहुधा गन्ने के पत्ते ही होते हैं उनका वजन काटा जाता है। ऐसा वजन लगभग एक पाव प्रतिमन होगा।

जहां मिल निकट न हो वहां चीनी की मिलों के एजेंट जाकर गन्ना खरीद लेते हैं और मोटर ट्रक या रेल से मिलों तक पहुंचा देते हैं।

कुछ कृषक गन्ना न बेचकर गुड़ ही बनाते हैं। ऐसे कृषक बैलों से चलनेवाली चरखी और गुड़ बनाने के कुछ यंत्र[1] किराये पर ले आते हैं और कुछ ग्रामीण कारीगरों से ही लकड़ी के बनवा लेते हैं।

गन्ने की उपज—गन्ने की उपज स्थान, जलवायु, गन्ने की जाति, खाद और खेती की रीति पर निर्भर है। पतले गन्ने की अपेक्षा मोटे की उपज अधिक होती है; परंतु पतले के लिए सिंचाई कम करनी होती है और जंगली जानवरों से इसे हानि कम पहुंचती है। इसलिए उत्तर भारत में अधिकतर पतला गन्ना ही उपजाया जाता है।

साधारणतः अच्छे खेतों से पतले गन्ने की औसत उपज चारसौ से पांचसौ मन तक हो जाती है। उत्तर प्रदेश में ७५०[2] कृषकों के गन्ने की औसत उपज १९४२-४३ में ४७० मन पड़ी थी। वैसे चीनी के व्यव-

---

[1] वर्णन आगे दिया है।

[2] उत्तर प्रदेश रिपोर्ट १९४२-४३।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साय की रिपोर्ट में जो अंक दिये हैं उनसे प्रांतीय औसत उपज निम्नलिखित मिलती है।

उत्तर भारत		दक्षिण भारत	
उत्तर प्रदेश	३६१ मन	मद्रास	६४८ मन
बिहार	३०४ ,,	बंबई	५७७ ,,
बंगाल	४५१ ,,	हैदराबाद	५२५ ,,
आसाम	२७८ ,,	मैसूर	३३३ ,,
पंजाब	२०६ ,,		
सीमाप्रांत	२९८ ,,		
औसत	३१६ मन	औसत	५२१ मन

भारतवर्ष में गन्ने की अधिक-से-अधिक उपज दक्षिण बंबई में महाराष्ट्र चेम्बर ऑफ कॉमर्स की प्रतियोगिता में १०४[1] टन (२८२८ मन) प्रति एकड़ आई थी। मैसूर में गुरूराजराव[2] ७२ टन (१९५८ मन) तक की उपज फैक्ट्री, फार्मों की बतलाते हैं। अधिक-से-अधिक ६० टन (१४३२ मन) की उपज उत्तर प्रदेश से भी मिली है।

गांधी[3] महोदय ने जो अंक दिये हैं उनसे ज्ञात होता है कि १९३०-३१ में जहां समस्त भारत की उपज १२·३ टन प्रति एकड़ थी वह १९३७-३८ में १५·५ टन तक बढ़ी। बाद में १९३८-३९ से १९४४-४५ तक १५ टन (४०८ मन) तक पड़ती रही।

गुड़ और चीनी बनाने की रीति—चीनी तो आजकल मिलों में बनती है, जहां गन्नों की तीन-तीन लाठियेवाली चार-पांच चर्खियों में पानी छींट-छींटकर पीला जाता है, ताकि अधिक-से-अधिक रस प्राप्त हो जाय। यहांपर गुड़ बनाने की रीति का वर्णन दिया जाता है।

---

[1] Indian Sugar Manual. १९४५-४६ पृष्ठ १५८।

[2] Sugarcane Cultivation by Gururajrao १९४७ पृष्ठ १८

[3] The Indian Sugar Industry १९४५-४६ पृष्ठ ३१

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुड़ बनाने के लिए आवश्यक यंत्र

(१) चर्खी—गन्ना पेलकर रस निकालने के लिए।
(२) नादें या कोठी—लोहे का ऐसा बर्तन जिनमें चर्खी से निकाला हुआ रस इकट्ठा किया जाता है।
(३) नांद से रस निकालने के लिए घड़े या बाल्टियां।
(४) रस छानने के लिए कपड़ा और दो टोकरे।
(५) रस उबालने के लिए लोहे या तांबे का कड़ाह।
(६) उबलते हुए रस को चलाने के लिए लंबे दस्तेवाले खर्पे।
(७) मैल निकालने के लिए झांझ (झरने)।
(८) दो चटुए।
(९) भट्टी का ग्रेट।
(१०) भट्टी में झोंकन चलाने के लिए लोहे की छड़ जिसका एक मुंह मुड़ा हुआ हो।
(११) राख निकालने का शॉवेल (Showel.)
(१२) गुड़ रखने के लिए मटके या यदि सूखा हो तो टोकरे, चट्टियां इत्यादि।

उपर्युक्त यंत्रों के सिवाय रस का मैल निकालने के लिए दूध, चूने का पानी या भिंडी, सेमल, फालसा, देवला, सुखलाई इत्यादि की छालों का रस भी चाहिए और चूंकि चर्खियां रात को भी चलती हैं, अतः रोशनी का भी प्रबंध होना चाहिए।

(१) चर्खियां—पहले जमाने में पत्थर के कोल्हू में गन्ने के टुकड़े डालकर जिस प्रकार बैल की घानी से तेल निकाला जाता है उसी रीति से रस निकालते थे। बाद में लकड़ी के लाठिये की चर्खियां हुईं जो अब भी कहीं-कहीं काम में आती हैं। वर्तमान समय में विशेषतः लोहे की चर्खियां ही काम में लाई जाती हैं, जो कई तरह की होती हैं। किसी-किसी में दो, किसी-किसी में तीन लाठिये (Rollers) रहते हैं। आजकल बहुधा तीन लाठियेवाली ही काम में लाई जाती हैं; क्योंकि इनसे रस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुछ अधिक निकलता है। इन चर्खियों में कुछ ऐसी भी होती हैं जो इंजिन से चलाई जा सकती हैं; परंतु ऐसी चर्खियों की गुड़ बनाने के लिए विशेष आवश्यकता नहीं। जो कृषक चीनी के लिए गन्ने की खेती करते हैं वे तो अपना माल मिल में भेज देते हैं; और जो गुड़ बनाना चाहते हैं उनके लिए तो बैलों से चलनेवाली चर्खियां काफी होंगी। लेकिन यदि क्षेत्र अधिक हो और फार्म पर आइल इंजिन हो तो बड़ी चर्खी (इंजिन से चलाई जाने वाली) लगाई जा सकती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चर्खी
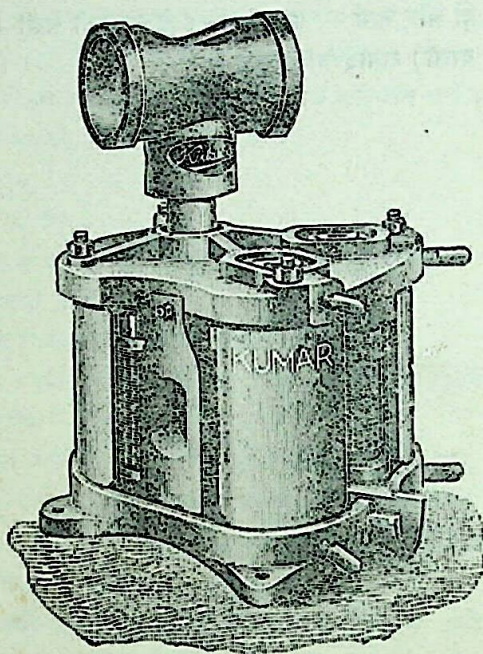
गन्ना पेरने की "कुमार" चर्ख़ी ।

[विवरण पृष्ठ १०९ पर देखिए]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोहे की चर्खियों से साठ से सत्तर शतांश तक रस निकाला जा सकता है। यह गणना गन्ने के वजन पर है। भारत में कई जगह चर्खियों की जांच की गई और प्रायः सबकी उपयोगिता लगभग समान ही मिली। अधिकांश से पैंसठ शतांश तक रस प्राप्त होता है। पंजाब की 'नाहन' (मुलतान) से ६२ से ६८ शतांश तक रस उत्तर प्रदेश में निकला जा सका। किर्लोस्कर की 'कुमार' और 'करामात' नाम की चर्खियों से ७० शतांश तक भी रस प्राप्त हुआ।

बैलों की जोड़ियां[1] अच्छी हों तो ऐसी चर्खियों से तीन-चार मन गन्ना प्रति घंटा पीला जा सकता है। यदि दिन-रात का औसत लगाया जाय, जिसमें छूट का समय भी रहता है, तो लगभग ३ मन गन्ने का औसत लेना ठीक होगा।

संपन्न कृषक या जमीदार चर्खियां अपनी ही रखते हैं और जब काम हो जाता है तो दूसरे कृषकों को किराये पर दे देते हैं। बहुधा ऋणदाता साहूकार ही चर्खियां किराये पर दिया करते हैं।

चर्खियां लकड़ी के चौखटे में लगाकर जमीन में उसकी सतह के बराबर गाड़ी जाती हैं। चर्खी का वह भाग, जिसमें लाठ (बल्ली) लगी रहती है, जमीन से ऊपर रहता है। लाठ की लंबाई लगभग चौदह फुट की होनी चाहिए। इस लाठ का एक छोर चर्खी में लगा रहता है और दूसरे छोर पर बैल की जोड़ी जोती जाती है जो गोलाकार मार्ग में घूमती रहती है। चर्खी के पास इतना गहरा गढ़ा रहना चाहिए, जिसमें एक व्यक्ति बैठकर पास के रखे हुए गन्ने चर्खी में देता रहे और लाठ उसके सिर पर से होकर निकल जाय। चर्खी के सामने कुछ लोग लोहे की नांद गाड़ देते हैं जिसमें चर्खी से निकला हुआ रस गिरता रहे। नांद के ऊपर एक कपड़ा भी बांध देना चाहिए ताकि रस छनकर

---

[1] चूंकि चर्खियां दिन-रात चलानी पड़ती है, इसलिए दो जोड़ी अच्छे बैल रखने चाहिए ताकि पारी-पारी से जोतते रहें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गिरे। नांद के अभाव में मिट्टी के घड़े, वाल्टी या मिट्टी के तेल के पीपों में भी काम चल सकता है, परंतु नांद रहने से यह लाभ होता है कि बहुत-सा रस उसमें एक साथ इकट्ठा हो जाता है। नांद के भर जाने पर कड़ाह में डाल दिया जाता है। चर्खी की दूसरी ओर एक लड़का टोकरा लिये बैठा रहता हैं, वह चर्खी से निकलें हुए रस-रहित टुकड़ों को टोकरे में डालता जाता है। टोकरा भर जाने पर उन्हें सूखने के लिए फैला देते हैं और बाद में यह जलाने के काम आते हैं।

(२) नांद—चर्खी में गन्नों के दबने से जो रस निकलता है वह लाठियों के सहारे से नीचे एक नालीवाले वर्तन में गिरकर उसके द्वारा बड़े वर्तन में गिरता है जिसे नांद कहते हैं। यह नांद ऐसी होनी चाहिए, जिसमें, हो सके तो एक कड़ाह में उवाला जा सके इतना, रस समा जाय। नांद इतनी गहरी भी न हो कि रस निकालने में कष्ट हो। ढाई फुट गहरी काफ़ी होगी। ऊपर के मुंह का व्यास ढाई फुट तथा नीचे के पेंदे का व्यास दो फुट का उत्तम होगा। नांद के अभाव में, जैसाकि पहले वताया गया है, मिट्टी के घड़े, वाल्टियां या मिट्टी के तेल के डिव्वे भी काम में आ सकते हैं।

(३) नांद में से रस निकालनेवाले वर्तन—इसके लिए घड़े या वाल्टियां अच्छी होंगी।

(४) कड़ाह—रस उवालने के कड़ाह तांवे या लोहे के कई प्रकार के होते है। यद्यपि वहुधा सव गोल होते हैं परंतु उनके पेंदे में फ़र्क होता है। किसीका गोल तो किसीका चपटा। गोल पेंदेवाले कड़ाह ठीक नहीं होते। उनमें सव जगह आंच वरावर नहीं लगने से जव गुड़ वनने को आता है तो ऊपर की ओर वाजू पर चिपका हुआ रस अधिक गरम हो जाता है और उसका स्वाद विगड़ जाता है। गुड़ अच्छा वने, इसलिए कहाड़ चपटे पेंदेवाले होने चाहिए। कड़ाह कहीं-कहीं एक चद्दर के होते हैं अर्थात् उनका पेंदा एक ही चद्दर का वना हुआ होता है और कहीं-कहीं वहुत-से टुकड़े रिवेट से जोड़कर लगाए हुए होते हैं। वहुत-से टुकड़ेवाले कड़ाह ठीक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं होते, क्योंकि टुकड़ों के बाजू में गुड़ भर जाता है और जल जाता है। ऐसे कड़ाहों में बहुधा उड़द का आटा कुछ रस में घोलकर लगाना पड़ता है ताकि कड़ाह की सतह समान हो जाय। इसपर घिसते समय कुछ तेल भी डाल देते हैं। जहांतक बने ऐसे कड़ाह लेने चाहिए, जिनका पैंदा एक ही टुकड़े का बना हुआ हो।

चपटे पैंदेवाले कड़ाह भी छोटे-बड़े कई प्रकार के होते हैं। कुछ इतने छोटे होते हैं कि जिनमें एक मन से भी कम रस आता है, जैसे पंजाब की ओर कहीं-कहीं पाये जाते हैं तो दूसरी ओर मद्रास की तरफ इतने बड़े कड़ाह होते हैं कि उनमें एक साथ बीस-पच्चीस मन रस औटाया जाता है। इतना रस औटाने के लिए समय भी आठ-नौ घंटे लग जाता है। इसका कार्य तो ऐसा होना चाहिए कि लगभग तीन घंटे में एक कड़ाह रस का गुड़ तैयार हो जाय। उधर चर्खी से तीस घंटे में जितना रस बने वह एक कड़ाह में समा जाय, बैलों की चर्खी द्वारा एक घंटे में यदि तीन ही मन गन्ना पीला जाय तो तीन घंटे में नौ मन हुआ। उससे साठ शतांश रस मिले तो लगभग पांच-साढ़े पांच मन रस हुआ तो हमारे कड़ाह ऐसे होने चाहिए जिनमें उपर्युक्त मात्रा उबल सके। इस कार्य के लिए निम्नलिखित नाप का कड़ाह उत्तम होगा—

ऊपर का व्यास	...	साढ़े चार फुट
नीचे का व्यास	...	चार फुट
गहराई	...	सवा फुट

(५) रस छानने के लिए कपड़े और टोकरे—कपड़ा रहे तो अच्छा ही है; नहीं तो बांस के टोकरों से भी काम चल जाता है।

(६) उबलते हुए रस को चलाने के लिए लंबे दस्तेवाले खुर्पे—बांस के डंडों के एक मुंह पर लकड़ी के चपटे टुकड़े लगाकर बनाये जा सकते हैं या लोहे के भी काम में लाये जा सकते हैं।

(७) मैल निकालने के लिए झांझ (झरने)—ये लोहे के होते हैं; परंतु यदि ऐसे न हों तो बांस के छबड़ों से भी यह कार्य हो सकता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(८) चटुए (चाटलियां)—ये दो-एक हाथ लंबे लकड़ी के टुकड़े होते हैं जिनका एक छोर चपटा होता है। गरम गुड़ को हिलाने और उसमें दाना पाड़ने के लिए ये काम आते हैं।

(९) भट्टी का ग्रेट—रस गरम करने की भट्टियां भारत में कई प्रकार की होती हैं। प्रांतीय कृषि-विभागवाले भट्टियों में थोड़ा-वहुत सुधार करते रहते हैं, ताकि जलावन कम लगे।

साधारण भट्टियां तो ऐसी होती हैं कि एक गोल गढ़ा खोदकर उस पर कड़ाह चढ़ा दिया जाता है और भट्टी का मुंह एक ओर बना देते हैं। उसी मुंह से झोंकन (जलावन) डाला जाता है, उसीसे धुआं भी निकलता है और उसीसे राख भी निकालते हैं। ऐसी भट्टियों में जलावन विशेष लगता है और ताप बरावर नहीं लगने से गुड़ भी जैसा चाहिए उतना अच्छा नहीं उतरता। यथार्थ में देखा जाय तो भट्टी ऐसी होनी चाहिए जिसमें जलावन ग्रेट (लोहे की जाली) पर जलाया जाय ताकि वह अच्छी तरह से जले। हवा देने का मार्ग ऐसा हो जिसमें आवश्यकता-नुसार हवा दी जा सके। जलावन झोंकने का मुंह अलग और उसके सामने वाली भट्टी के दूसरी ओर धुआं निकलने का मार्ग हो और चिमनी भी हो। उसी भट्टी के साथ में एक दूसरी भट्टी ऐसी होनी चाहिए जिसपर ठीक उसी कड़ाह के नाप का दूसरा कड़ाह चढ़ाया जा सके और भट्टी से निकलते हुए धुएं के मार्ग पर हो ताकि वाहर निकलती हुई आंच से भी कुछ लाभ उठाया जाय अर्थात् उस कड़ाह में रस थोड़ा-थोड़ा गरम होता रहे। ये भट्टियां ऐसी हों कि जिनपर ऊपर बतलाये हुए आकारवाले कड़ाहे चढ़ जायं। ज्योंही एक कड़ाह का गुड़ तैयार हो जाय भट्टी पर से उसे उतारकर वगलवाली भट्टी का कड़ाह, जिसमें रस कुछ गरम रहता है, चढ़ा देना चाहिए और गुड़ खाली करके पहला कड़ाह दूसरी भट्टी पर चढ़ाकर उसमें रस डाला जाना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(क) जलावन डालने के द्वार। (ख) हवा को कम-अधिक करने तथा राख निकालने के द्वार। (ग) रस गरम करने की कड़ाहें। (घ) लोहे की जाली, जिसपर जलावन जलता है। (ङ) राख गिरने का स्थान। (च) धुम्रां निकलने का मार्ग।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसी भट्टी में प्रारंभ में तो खर्च विशेष होगा, परंतु जहां गन्ना अधिक हो और बहुत-से कृषक, जैसाकि होता है, एक ही स्थान पर गन्ना लाकर पेलते हैं, तो ऐसे स्थानों में ऐसी ही भट्टी उत्तम होगी। जलावन की वचत से भट्टी वनवाने का खर्च ही नहीं वल्कि कुछ लाभ ही होगा।

भट्टी की वनावट में कुछ ईंटें लगेंगी। ग्रेट के लिए लोहे की छड़ें लगेंगी। चार फुट व्यास का गड्ढा ढकने भर की छड़ें होनी चाहिए। छड़ों के बीच में आधे इंच से एक इंच का अंतर काफी होगा।

हवा के मार्ग की तरफ एक किवाड़ ऐसा रहना चाहिए जो ऊपर खींचा जा सके यानी उतारा जा सके। ऐसा करने से आवश्यकतानुसार हवा दे सकेंगे।

जहां गन्ना कम हो वहां एक कड़ाहवाली ही ऐसी भट्टी काफी होगी।

(१०) भट्टी में झोंकन चलाने के लिए लोहे की छड़—ग्रेट के ऊपर से राख नीचे गिरती रहती है और ऊपर जलावन जलता रहता है। परंतु कभी-कभी राख ग्रेट की जाली तक राख पहुंच जाती है अथवा ग्रेट की जाली वंद हो जाती है; तो उसे साफ करने के लिए एक पांच फुट लंबी लोहे की छड़ होनी चाहिए; जिसका एक मुंह गोल हो और दूसरा मुंह चार-पांच इंच के करीव मुड़ा हुआ हो।

(११) राख निकालने का शावेला—सूपाकार एक लंबे दस्ते-वाला, लोहे का वनाया जा सकता है।

(१२) गुड़ रखने के मटके या यदि सूखा हो तो टोकरे चट्टियां आदि।

गुड़ बन जाने पर उसे रखने का प्रवंध होना चाहिए। इसके लिए कई जगह मटके काम में लाये जाते हैं और एक तरह से देखा जाय तो इस रीति से रखना उत्तम भी है; क्योंकि इस रीति से रखे हुए गुड़ पर मक्खियां नहीं वैठतीं। बर्रें और चिउंटे भी तंग नहीं करते। बरसात में जो गुड़ बहने लगता है, यदि वह मटकों में हो तो उनके मुंह के ऊपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ढकनी रखकर चिकनी मिट्टी से ऐसे वंद कर दिये जा सकते हैं कि उन-पर वातावरण की तरी का असर नहीं पड़ेगा। लेकिन मटकों में भरनें में चालान में बड़ी दिक्कत होती है। चालानवाला गुड़ तो सूखा, गोले, भेली, पाटले, ढेव अथवा वालटी के रूप में खुला या चट्टी में लपेटा हुआ ही अच्छा होता है। ऐसे गुड़ के गोले भारत में स्थानानुसार आधी छटांक से लेकर सवा सेर तक के होते हैं। भेलियां ढाई सेर से पांच सेर तक की और पाटले, ढेव या वालटी दस सेर से लेकर तीस सेर तक के बनते हैं। पिछले तीन पर चट्टी भी चढ़ाई जाती है सो चट्टियां भी रखनी होती हैं। पाटले और वालटी के लिए तो जमीन से गढ़ा खोदकर उसे लीप कर रखते हैं और चट्टी या कपड़ा विछाकर गरम-गरम गुड़ उसमें डाल देते हैं सो वह गढ़े के आकार का जम जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: ६ :

गीनी घास[१]

Guinea grass *Panicum maixmum.*

यह एक प्रकार की घास होती है, जिसकी जन्म-भूमि अफ्रिका है। एकवार लगा देने से यह घास एक स्थान पर कई वर्षों तक लगी रहती है। इसके पत्ते चार-पांच फुट ऊंचे होते हैं। यह घास गर्म देशों में तो लगातार बारहों महीने बढ़ती है परंतु ठंडे स्थानों में सर्दी के दिनों में इसकी बाढ़ बहुत कम होती है। भारतवर्ष में बरसात और गर्मी में ही इसकी बाढ़ होती है। सालभर में भूमि की उर्वरा शक्ति तथा ऋतु के अनुसार आठ-दस कटाई ली जा सकती हैं।

जलवायु—इसे उष्णता अधिक प्रिय है, परंतु शीतोष्ण स्थानों में भी उपजाई जा सकती है।

भूमि और जुताई—इसके लिए बलुआ-दुमट और दुमट भूमि अच्छी होती है परंतु मटियार-दुमट में भी उपजाई जा सकती है। चूंकि इसके कूंचे [२]लगाना अच्छा होता है, इसलिये जुताई काफी गहरी होनी चाहिए। वैसे चाहें तो इसे बीज से भी उपजा सकते हैं।

---

[१] यथार्थ में देखा जाय तो हरेचारे की फसलें रोक-फसलों में नहीं आनी चाहिए परंतु इन पांच-सात बची हुई फसलों के लिए छोटी-सी पृथक पुस्तिका छपवाना भी ठीक नहीं होगा। इसी से रोक-फसलों की खेती में इसे स्थान दे दिया है।

[२] पहले जहां यह घास लगा हुआ हो वहां ऊपर का भाग काटकर शेष को खोदकर चीर करके थोड़ा-थोड़ा हिस्सा जड़सहित लगा देते हैं। ऐसे टुकड़ों को कूंचे कहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खाद और फसल का हेर-फेर—चूंकि इसकी फसल भी कई साल तक रहती है, अतः यह अधिकतर नगरों के निकट डेरी या दूसरे फार्मों पर लगाया जाता है। हाथीकांड़ा घास के वर्णन में आगे जिस प्रकार शहर का कूड़ा-कर्कट तैयार करके खाद देने का वर्णन दिया है उसी भांति इसके लिए भी देना उत्तम होगा। कम-से-कम वैसा खाद ३०० मन देना चाहिए। गोबर का खाद मिल सके तो २०० मन के लगभग प्रति एकड़ के हिसाब से देना अच्छा होगा।

हेर-फेर—चूंकि फसल कई साल तक एक ही स्थान पर रहती है इसलिए हेर-फेर की आवश्यकता नहीं और न कोई फसल इसके साथ ही उपजाई जा सकती है।

बीज और बोआई—वैसे चाहें तो इसे बीज से बो सकते हैं परंतु कूंचे लगाना ही अच्छा होता है। भारत में पंक्तियों का अंतर दो-ढाई फुट का उत्तम लगा है, वैसे अमेरिका में चार-पांच फुट की दूरी पर भी पंक्तियां रखी जाती हैं। पंक्तियों में पौधे-से-पौधा दो-दो फीट की दूरी पर लगाना चाहिए। उपर्युक्त दूरी पर लगाने से एक एकड़ के लिए लगभग पौने नौ हजार कूंचों की आवश्यकता होगी। ऐसे कूंचे बरसात में उपर्युक्त दूरी पर नालियां बनाकर उनमें लगा देने चाहिए।

निंदाई और देखभाल—प्रारंभ में घास-पात निकाल देनी चाहिए। बाद में पंक्तियों के बीच में वर्षा ऋतु में घास की कटाई के बाद हल चला देना चाहिए। हर तीसरे-चौथे साल कतारों के बीच में सौ मन के लगभग खाद डालकर हल चलाना अच्छा होगा, ताकि वह अच्छी तरह से मिल जाय। जहां सीवेज या शहर की मोरियों का पानी दिया जा सके वहां खाद देने की आवश्यकता नहीं होती। इस घास में जब फूल और बीज आने लगे तो उन्हें तोड़ देना चाहिए।

सिंचाई—गर्मी में आवश्यकतानुसार दस-पंद्रह दिन में और सर्दी के दिनों में बीस-पचीस दिनकेअं तर पर सींचना होता है।

कीट और व्याधियां—विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फसल की तैयारी और उपज—रोपने के पश्चात् जबतक पौधे लगभग चार फुट ऊंचे न हो जायं नहीं काटना चाहिए। उसके बाद की कटाई के लिए तीन-तीन फुट की ऊंचाई काफी होगी। पहले साल में छैं-सात कटाई मिल सकती हैं। बाद में प्रतिवर्ष आठ-दस कटाई ली जा सकती हैं। प्रत्येक कटाई में सौ-सवासौ मन हरा चारा प्रति एकड़ मिल जाता है

वितरण और व्यवसाय—यदि आवश्यकता से अधिक हो तो बेचा जा सकता है या सुखाकर भी रख सकते हैं।

उपयोग और गुण—हरा चारा पशुओं को खिलाया जाता है। विशेषतः दुधारू पशुओं के लिए अच्छा होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: ७ :

बरसीम

Berseem, Egyptian clover *Trifolium alaxandrinum*

बरसीम की खेती मिश्र में अधिक होती है। वहीं से सं० १९०४ में फ्लेचर[1] महोदय द्वारा भारत में इसका आगमन हुआ और चूंकि सिंघ की जलवायु मिश्र की जलवायु से मिलती-जुलती है वहीं इसे पहला स्थान मिला।

बरसीम का पौधा दाल वर्ग का है और मेथी, लूसर्न, सेंजी इत्यादि पौधों से मिलता-जुलता है। बरसीम के फूल सफेद, लूसर्न के बेंगनी या काशनी तथा सेंजी के पीले होते हैं। लूसर्न के पत्ते बरसीम की अपेक्षा अधिक गहरे हरे रंग के होते हैं। बरसीम का पौधा लगभग दो फुट की ऊंचाई का होता है। बरसीम के दाल-वर्ग के होने से भूमि की उर्वरा शक्ति भी बढ़ती है। हरे चारों में बरसीम के सिवाय लूसर्न शफताल, और सेंजी भी इसी वर्ग के हैं परंतु बरसीम सबसे उत्तम है, क्योंकि शफताल और सेंजी से इसकी उपज अधिक होती है। जहां शफताल से दो तीन कटाव मिल सकते हैं और सेंजी से एक ही मिलता है, वहां बरसीम से साल भर में पांच-छै कटाव मिल जाते हैं। लूसर्न के कटाव तो बरसीम से अधिक मिलते हैं परंतु वह तीन-चार साल तक एक ही स्थान पर रहता है। खेतों में जंगली अनावश्यक पौधे बहुत जम जाते हैं। इसके सिवाय जहां बरसीम लिया जाता है वहां प्रतिवर्ष पहली फसल मक्का या चरीवाली ज्वार भी बो सकते हैं।

जलवायु—इसके लिए सूखा और गर्म वातावरण उत्तम होता है।

---

[1] पूसा बुलेटिन नं० ६६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जहां की जलवायु में तरी विशेष होती है वहां इसमें बीज नहीं बैठते। यही कारण है कि भारत के पूर्वीय भागों में जब बरसीम बोना होता है तो बीज उत्तर पश्चिमीय भागों से मंगवाये जाते हैं।

भूमि और जुताई—भारी मटियार भूमि को छोड़कर यह सब मिट्टी में हो जाता है। पहली जुताई हल से ऐसी होनी चाहिए कि जिससे लगभग छः इंच मिट्टी जुत जाय। इसके बाद बखर या हलके यंत्रों से जुताई करना काफी होगा। बरसीम के पहले मक्का-जैसी फसल ले लेनी चाहिए और फसल के हटाते ही तुरंत जुताई का काम शुरू कर देना चाहिए। इसे क्यारियों में बोना होता है सो अंतिम जुताई के बाद क्यारियां बना लेनी चाहिए। यदि भूमि समतल न हो तो पानी देने की नालियां बनाकर बीच की पारियों पर बो सकते हैं। नालियां डेढ़-डेढ़फुट की दूरी पर होनी चाहिए।

खाद और हेरफेरः—दाल-वर्ग की फसल होने से ना० के खाद की आवश्यकता नहीं, परंतु चूंकि ५-६ कटाई ली जाती हैं और उपज भी अधिक होती है, अतः थोड़ा गोबर का खाद देना चाहिए। फा० का खाद तो अवश्य देना चाहिए।

पोर महोदय[1] ने दिल्ली में प्रयोग करके देखा तो जहां बिना खाद के १६१ मन उपज आई वहां ४० सेर ना० गोबर के खाद के रूप में दी गई तो उपज ३२० मन हुई, उतनी मात्रा ना० की खली के रूप में पहुंचाई तो उपज ३३४ मन उतरी, कृत्रिम खाद एमोनियम सलफेट उतनी ही ना० की मात्रा के लिए दिया तो उपज १६६ मन आई और सिर्फ ६६ सेर फा० पे० सुपरफासफेट के रूप में दिया तो उपज ३३६ मन तक बढ़ गई। उपर्युक्त ब्योरे से ज्ञात होता है कि सिर्फ फा० का खाद ही दिया जाय तो भी इसको अच्छा लाभ पहुंचता है।

खादों का वर्तमान मूल्य देखते हुए आर्थिक लाभ की दृष्टि से खाद की

---

[1] Indian Farming Vol V. p. 160. 1944

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इतनी मात्रा देना संभवतः संभव न हो। उत्तम तो यह होगा कि सौ मन गोबर का खाद या दोसौ मन चाला हुआ एक साल का सड़ा हुआ शहर का कूड़ा-कर्कट और पच्चीस सेर फा० पे० पहुंचे इतना खाद हड्डी के चूरे के रूप में या सुपरफासफेट के रूप में दिया जाय।

हेरफेर—मिश्र में जहां इसकी खेती बहुत होती है वहां मक्का या जल्दी आनेवाली ज्वार के बाद बरसीम बोते हैं और उसके बाद कपास ले लेते हैं। कपास के बाद फिर बरसीम और फिर मक्का। बहुधा हेर-फेर का यही क्रम है। हमारे यहां भी हेर-फेर का यही क्रम अच्छा होगा। इसमें कपास को भी अच्छा लाभ पहुंचेगा।

बीज और बोआई—इसके बोने का उत्तम समय आश्विन-कार्तिक (अक्तूबर) है, वैसे मध्य नवंबर तक भी बो सकते हैं। लगभग पंद्रह सेर[1] बीज प्रति एकड़ डालना चाहिए। उन्हें रात को भिगो दिया जाय तो और भी अच्छा होगा। दूसरे दिन पानी से निकालकर मिट्टी के साथ मिलाकर छींट करके बो सकते हैं। छींटने के पश्चात पानी दे देना चाहिए अथवा पानी पहले देकर मिट्टी में तरी लाकर के हलकी जुताई के बाद बोना चाहिए।

जहां धान के बाद लेना हो वहां धान काटने के पहले खेतों में छींट सकते हैं।

इसके बीज जब नये खेतों में बोये जायं तो इन्हें एक प्रकार के सूक्ष्म जंतुओं के साथ मिलाकर[2] बोना चाहिए। ऐसे जंतु इसके पौधों पर भूरी-भूरी गठानें बनाकर रहते हैं और वायुमंडल की ना० को लेकर

---

[1] कहीं-कहीं आठ सेर बीज भी डालते हैं, परंतु ऐसी स्थिति में यदि खेत साफ न हो तो खरपतवार (Weeds) बहुत निकल आते हैं इसलिए अधिक बीज डालना ही उत्तम है।

[2] जो भी दाल-वर्ग के चारे की फसल बोई जाय उसके बीज के साथ उस फसल के योग्य सूक्ष्म जंतु मिलाने का ध्यान रखना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पौधों के पोषणार्थ उन्हें देते हैं। इन जंतुओं के अभाव में पौधे पनपने नहीं पाते और फसल बिगड़ जाती है। ऐसे जंतु प्रांतीय या केंद्रीय कृषि-विभाग से प्राप्त किये जा सकते हैं।

निंदाई और देखभाल—जंगली पौधे अधिक दिखें तो उन्हें प्रारंभ में निकाल देना चाहिए।

सिंचाई—आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। प्रत्येक सिंचाई में लगभग दो इंच पानी देना चाहिए।

कीट और व्याधियां—विशेष ध्यान की आवश्यकता नहीं।

फसल की तैयारी और उपज—बोने के दो महीने बाद पहला कटाव ले सकते हैं। उसके बाद प्रति महीने-सवा महीने पर एक कटाव ले सकते हैं। ऐसे पांच-छः कटाव जेष्ठ (मई) तक मिल जाते हैं।

उपज—भूमि की उर्वरा शक्ति और खाद की मात्रानुसार दोसौ से पांचसौ मन तक हरे चारे की ली जा सकती है।

वितरण और व्यवसाय—कुछ कृषक इसे बाजार में ले जाकर बेच आते हैं, जिसे अधिकतर तांगेवाले ही खरीदते हैं। साधारणतः कृषक निज के पशुओं को खिलाने के लिए ही इसका उपयोग करते हैं। इसको सुखाकर भी रख सकते हैं परंतु बड़ी तरकीब से सुखाना पड़ता है। तार, रस्सी या घेरों पर सुखाया जाय तो उत्तम होगा। जमीन पर सुखाने से उलट-पुलट करना पड़ता है, जिसमें पत्ते झड़ जाते हैं और यदि उलट-पुलट नहीं किया तो कुछ पत्ते काले होकर सड़ जाते हैं।

इसके बीज भारत के पूर्वीय भागों में नहीं होते। पश्चिमोत्तर भागों में भी हो जाते हैं। दिल्ली में प्रति एकड़ चार-पांच मन बीज हो जाते हैं। जिस जगह से बीज लेना हो वहां की फसल चारे के लिए फाल्गुन (मार्च) के बाद नहीं काटनी चाहिए।

उपयोग और गुण—पशुओं को खिलाया जाता है, विशेषतः दुधारू पशुओं के लिए बहुत उपयोगी है। सूखे चारे या भूसे के साथ मिलाकर इसे खिलाना चाहिए। इसके खिलाने से दूध अधिक बढ़ता है। गर्मी के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिनों में जब दुधारू पशुओं के लिए दूसरा हरा चारा नहीं होता, यह मिलता रहता है। इसे खिलाने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पशु अधिक न खा जायं। अधिक खा जाने से आफरे की बीमारी हो जाती है। दो भाग भूसे के साथ एक भाग बरसीम देना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: ८ :

लूसर्न

Lucerne or Alfalfa *Medicago sativa*

इसका पौधा मेथी की जाति का होता है। विशेषतः गर्मी में हरा चारा प्राप्त करने के लिए इसे लगाते हैं। रवी की फसल के साथ यह वोया जाता है। इसका पौधा दो-ढाई फुट ऊंचा होता है। फूल काशनी या वैंगनी रंग के होते हैं। इसके जो तीन-तीन पत्ते एक साथ होते हैं उनमें से वीच के पत्ते के साथ छोटी-सी डंडी (Petiole) रहती है, जिससे और फूल के रंग से इसे बरसीम (क्लोवर) से पहचान सकते हैं। बरसीम के फूल सफेद होते हैं। इसके सिवाय वरसीम के पत्ते हरे और लूसर्न के गहरे हरे होते हैं। फल एक अजीव सूरत का वल खाया हुआ होता है।

जलवायु—इसकी खेती ठंडे और सूखे वातावरणवाले देशों में अच्छी होती है। जहां वर्षा अधिक होती है वहां यह नहीं होता। उसी भांति वहुत गर्मी भी इसके लिए ठीक नहीं होती। इन कारणों से भारत में इसकी खेती बहुत कम होती है। वरसीम की ही विशेष होती है। पंजाव और सीमा प्रांत की तरफ कुछ खेती इसकी होती है।

भूमि और जुताई—एक वार लगा देने से हमारे यहां तीन-चार साल तक इससे चारा प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए जुताई अच्छी महीन होनी चाहिए। दुमट कछार भूमि लूसर्न के लिए उत्तम होती हैं। भारी मिट्टी ठीक नहीं होती।

खाद और हेर-फेर—यह भी दाल-वर्ग की जाति का है, इसलिए ना० के खाद की आवश्यकता नहीं, परंतु कटाव और उपज अधिक होने से लगभग दोसौ मन प्रति एकड़ गोवर का खाद या दोसौ मन चाला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ एक साल का पुराना शहर का कूड़ा-करकट डालना उत्तम होगा। फा० पे० का खाद भी इसके लिए लाभप्रद होता है। लगभग पच्चीस सेर फा० पहुंचे इतना खाद देना चाहिए। सर्दी के मौसम में प्रतिवर्ष थोड़ा खाद छींट देना चाहिए। यदि बोआई पारियों पर की हो तो नालियों में खाद छींटकर उसे हलके हल से मिट्टी में मिला देना चाहिए। एक स्थान पर फसल तीन-चार साल तक रहती है, इसलिए प्रतिवर्ष तो हेर-फेर नहीं करना पड़ता; परंतु चौथे साल में फसल लेने के बाद खेतों की अच्छी जुताई कर बरसात में उन्हें पड़ती छोड़ देना चाहिए और बाद में गेहूं या अन्य अनाज की फसल लेनी चाहिए।

बीज और बोआई—इसके लिए क्यारियां बनानी होती हैं, सो जमीन के ढालानुसार बना सकते हैं। साधारणतः पंद्रह फुट चौड़ी और बीस फुट लंबी क्यारियां उत्तम होती हैं। क्यारियां और पानी देने की नालियां बना लेने के बाद बीज क्यारियों में छींटकर मिट्टी में मिलाकर पानी दे देना चाहिए। बीज की मात्रा सात-आठ सेर प्रति एकड़ होनी चाहिए। बोने का समय आश्विन-कार्तिक (अक्तूबर) अच्छा होता है। इसे कहीं-कहीं पारियों पर भी बो देते हैं और नालियों में पानी दे देते हैं। जहां जमीन का ढाल अधिक हो वहां पारियां उत्तम होंगी। ऐसी पारियां दो-दो फुट की दूरी पर होनी चाहिए। पारियों पर बोया जाय तो पांच-छः सेर बीज काफी होगा।

निंदाई और देखभाल—साधारण निंदाई पहले करनी पड़ती है। बाद में जब-जब फसल काट ली जाय और यदि बीज पंक्तियों में पारियों पर बोये हुए हों तो नालियों में हलका हल या "हो" चलाते रहने से खरपतवार जमने नहीं पायेंगे।

सिंचाई—आवश्यकतानुसार की जा सकती है। साधारणतः गर्मी की ऋतु में आठ-दस दिन के अंतर पर सींचना होगा।

कीट और व्याधियां—विशेष ध्यान की आवश्यकता नहीं। कहीं-कहीं अमर बेल लग जाती हैं। उसे नहीं लगने देना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फसल की तैयारी और उपज——बोने के समय जब पौधे लगभग दो फुट की ऊंचाई के हो जायं तो काटना शुरू कर देना चाहिए। ऐसी ऊंचाई करीब तीन महीने में हो जाती है। उसके बाद प्रति दो मास में एक कटाव लेना चाहिए। ऐसे कुल छः कटाव सालभर में मिल जाते हैं। प्रत्येक कटाव से लगभग एकसौ मन हरा चारा प्रति एकड़ मिल जाता है। यदि सुखाना हो तो जब फूल थोड़े-थोड़े खिलने लगें इसे काटकर सुखा सकते हैं। जहां बीज बन सकते हों ऐसे स्थानों में बीज प्राप्त करने के लिए जब पकने लगे तब पानी कम देना चाहिए। बीज की उपज दो-तीन मन तक हो जाती है।

उपयोग और गुण——इसका चारा घोड़ों के लिए अच्छा होता है। दुधारू पशुओं को अधिक चारा दिया जाय तो दूध सूख जाता है। ऐसे पशुओं को तीन-चार सेर से अधिक नहीं देना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: ९ :

शफ़ताल

Safal, Persian Clover, Kabuli Clover

Trifolium rescupinatum

जैसे बरसीम की खेती मिश्र में अधिक होती है और वहीं से शायद इसका आगमन भारत में हुआ है, उसी भांति शफताल की खेती ईरान में अधिक होती है और वहीं से इसका आगभन भारत में हुआ होगा। शफ-ताल का पौधा बरसीम के पौधे से छोटा होता है। जिस प्रकार बरसीम की खेती की जाती है उसी भांति इसकी भी होनी चाहिए। बरसीम से इसकी उपज कम होती है, लेकिन सेंजी से अधिक होती है। जहां सेंजी से एक कटाव मिलता है, वहां इसके दो-तीन मिल जाते हैं और बरसीम से पांच मिलते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: १० :

सेंजी

Senji, Indian Clover, *Melilotus parviflra*

यह भी मेथी की जाति का पौधा होता है। ऊंचाई में बरसीम से कुछ छोटा होता है। इसके फूल पीले होते हैं। इसकी खेती पंजाब में विशेष होती हैं।

जलवायु—सूखा और ठंडा वातावरण अच्छा होता है

भूमि और जुताई—खरीफ की फसल मक्का या चरीवाली ज्वार लेकर खेतों की जुताई बरसीम के लिए जैसी करते हैं इसके लिए भी करनी चाहिए। इसके लिए क्यारियां बनानी होती हैं सो सिंचाई की नालियों के साथ क्यारियां भी बना लेनी चाहिए।

खाद और फसल का हेर-फेर—सेंजी भी दाल-वर्ग में ही है। इसे भी साधारणतः ना० का खाद नहीं चाहिए, परंतु उपज अधिक होने से कुछ खाद देना चाहिए। इसके लिए लगभग एक सौ मन गोबर का खाद या दो-सौ मन चाला हुआ कूड़ा-कर्कट और बीस सेर फा० पे० पहुंचे, इतना हड्डी का चूरा या सुपरफासफेट देना चाहिए। हेर-फेर में मक्का के बाद सेंजी लेकर कपास ले लेना अच्छा होगा। चूंकि इससे सिर्फ एक ही कटाव मिलता है, इसलिए चैत्र-वैशाख (अप्रैल) में पंजाब में भूमि तैयार करके कपास बो सकते हैं।

बीज और बोआई—बीज की मात्रा लगभग बीस सेर होनी चाहिए। यदि खेत सूखे हों तो हलकी सिंचाई कर जब मिट्टी दतारी या कांटों से चलाने जैसी हो जाय तो बीज को छींटकर उसमें मिला देना चाहिए। बोने का समय आश्विन-कार्तिक (अक्तूबर) है।

निंदाई और देखभाल—प्रारंभ में यदि खरपतवार जम जायं तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्हें निकाल देना चाहिए।

सिंचाई:—बोने के दस-बारह दिन बाद आवश्यकतानुसार सींचना चाहिए।

कीट और व्याधियां—विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं।

फसल की तैयारी और उपज—बोने के समय से तीन-चार महीने में फसल काटने-जैसी हो जाती है। फूल खिलने लगें तब चारे की फसल को काट लेना चाहिए और बीजवाली को छोड़ देना चाहिए। इसकी कटाई एक ही बार होती है। लगभग डेढ़सौ से दोसौ मन तक हरा चारा मिल जाता है।

वितरण और व्यवसाय— अधिक होने से बेच सकते हैं, लेकिन कृषक बहुधा अपने पशुओं के चारे के लिए ही इसे उपजाते हैं।

उपयोग और गुण—इसे भी दुधारू पशुओं को खिलाते हैं। यह भी अधिक मात्रा में नहीं देनी चाहिए, क्योंकि इसमें भी आफरे की व्याधि हो जाती है। पांच सेर के लगभग दे सकते हैं। इस चारे से भी दूध बढ़ता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: ११ :

हाथी कांड़ा

Elephant grass or Napier grass

Pennisetum purpureum

यह घास छोटे-छोटे ईख जैसा होता है। चूंकि हरे घास की उपज अच्छी देता है, इसलिए इसकी खेती कहीं-कहीं सरकारी फार्मों पर होती है। और एक विशेष लाभ यह है कि एक बार लगा देने से कई साल तक रहता है। पत्ते ईख के पत्ते जैसे कुछ पतले होते हैं। पौधों की ऊंचाई पांच-छः फुट तक भूमि की उर्वरा शक्ति के अनुसार हो जाती है।

जलवायु—उष्ण और शीतोष्ण जलवायु इसके लिए अच्छी होती है। वर्षा जहां पचीस-तीस इंच से अधिक हो वहां इसकी उपज अच्छी होती है।

भूमि और जुताई—वैसे इसके लिए दुमट मिट्टी अच्छी होती है, परंतु मटियार-दुमट या बलुआ दुमट में भी इसे उपजा सकते हैं। चूंकि एक बार लगा देने से यह फसल एक स्थान पर तीन-चार वर्षों तक लगी रहती है, इसलिए जुताई काफी गहरी होनी चाहिए। इसके सिवाय चूंकि बीज से न बोकर पौधों के कूंचे (खूटिया) लगाने होते हैं, इसलिए भी जुताई गहरी करना पड़ती है।

खाद और फसल का हेर-फेर—इसकी फसल ग्रामों में तो नहीं उपजाई जाती, परंतु नगरों के निकट जहां डेरी या दूसरे फार्म हों और जहां हरे चारे की अधिक आवश्यकता होती है, वहां इसे उपजाया जाता है। ऐसे स्थानों में शहर का कूड़ा-कर्कट सस्ते मूल्य पर मिल जाता है, सो उसका उपयोग करना उत्तम होगा। जहां म्युनिसिपैलिटी के द्वारा इकट्ठे किये हुए कूड़े-कर्कट के ढेर लगे रहते हैं, वहां से एक साल के पुराने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खाद को मोटे छेदवाले चलनों से चालकर काम में लाना चाहिए। चलनों से चालने से पुराने टीन, वोतलें या अन्य वर्तनों के टुकड़े, पुराने टायर्स वगैरह जो खाद के काम के नहीं होते अलग कर दिये जाते हैं। ऐसे चाले हुए खाद को कम-से-कम तीनसौ मन प्रति एकड़ के हिसाव से मिट्टी में मिला देना चाहिए।

हेर-फेर—तीन-चार साल वाद फसल वदल देनी चाहिए। इसके कूंचे (खूंटियां) खोदने के लिए जमीन की खुदाई अच्छी हो जाती है। उस जमीन में फिर सौ मन के करीव गोवर का खाद और लगभग तीन-चार मन हड्डी का चूरा या उतना ही सुपरफासफेट डालकर दलहन की कोई फसल लेनी चाहिए!

बीज और बोआई—इसके वीज नहीं बोये जाते। कूंचे चीर-चीरकर लगा दिये जाते हैं। पंक्तियों में लगभग ढाई फुट से तीन फुट और कूंचे से कूंचे में दो फुट का अंतर रखना उत्तम होगा। इनके कूंचे वर्सात में लगा देने चाहिए।

निंदाई और देखभाल—अगर वन सके तो लगाने के वाद दूसरा घासपात दो-एक वार निकाल देना चाहिए।

सिंचाई—शरद ऋतु के अंत में और गर्मी के दिनों में सिंचाई करनी होती है, सो आवश्यकतानुसार करनी चाहिए, ताकि हरा चारा वरावर मिलता रहे।

कीट और व्याधियां—विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं।

फसल की तैयारी और उपज—रोपने के समय से चार-पांच महीने वाद काटने योग्य चारा हो जाता है। उसके बाद आवश्यकतानुसार महीने-डेढ़ महीने के अंतर पर काटते रहना चाहिए। हरे चारे की उपज प्रत्येक कटाव पर लगभग दोसौ मन प्रति एकड़ हो जाती है।

वितरण और व्यवसाय—पशुओं को खिलाने के लिए उपजाया जाता है, सो यदि निज की पूर्ति से अधिक हो तो वाजार में वेच सकते हैं।

उपयोग और गुण—दुधारू और जुताई के लिए काम में लाये जाने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाले पशुओं के लिए ऐसा चारा उत्तम होता है ।

उपर्युक्त चारे की फसलों में वनस्पति वर्गानुसार बरसीम, लूसर्न शफताल और सेंजी दालवर्ग की फसलें हैं। इनका चारा पोषण-शक्ति के विचार से विशेष लाभकारी है। भिन्न-भिन्न चारे में कितने पोषक पदार्थ[१] रहते हैं, यह यहां दिखला देना अनुचित न होगा। तुलना के लिए गिनी घास के पोषक पदार्थों की मात्रा भी दी जाती है। तुलना ठीक-ठीक हो सके, इसलिए प्रत्येक की मात्रा जलरहित पदार्थ पर गिनकर यहां दी गई है।

(प्रतिशत)

	आमिषजातीय	शर्करा जातीय और अन्य पदार्थ	स्नेह	घुलनशील लवण	तंतु
बरसीम	२३·६	३६·८	३·०	१७·४	१९·२
लूसर्न	१६·०	४७·५	३·४	१२·४	२०·७
शफताल	१६·८	४७·६	२·६	१५·३	१७·७
सेंजी	१७·२	३९·५	२·३	१२·०	९·०
गीनी घास	५·१	५२·३	२·३	७·०	३९·३

[१] पूसा बुलेटिन नं० ७० के आधार पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरे खाद की फसलें

हरे खाद को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। एक तो वे जिन्हें खेतों में उपजाकर उन्हींमें गाढ़ देते हैं और दूसरे वे जिनके लिए हरे पौधे या पत्ते वाहर से लाकर खेतों में गाड़े जाते हैं।

(१) पहले वर्ग की हरे खादों की फसलें पुनः दो उपवर्गों में विभाजित की जा सकती हैं।

(क) वे जिनसे भूमि में सिर्फ कार्वनिक पदार्थ की बढ़ती होती है, जैसे सूरजमुखी (Sunflower), इसी प्रकार का दूसरा पौधा (*Tithonia diversifolia*) या सरसों इत्यादि।

(ख) इस उपवर्ग में उन फसलों की गणना है, जिनसे भूमि में सिर्फ कार्वनिक पदार्थ ही नहीं बढ़ते वल्कि उनके पौधों की जड़ों पर एक प्रकार के सहयोगी सूक्ष्म जंतु रहते हैं जो वायुमंडल की नाइट्रोजन को अपनाकर पौधों को देते हैं और जब ऐसे पौधे गाड़े जाते हैं तो भूमि की उर्वरा शक्ति विशेष बढ़ती है। इस वर्ग में दाल-वर्ग के पौधों की गणना है, जैसे सन, उड़िद, चवली इत्यादि

(२) इस दूसरे वर्ग में हम उन खादों को स्थान देंगे जो बाहर से लाकर खेतों में गाड़े जाते हैं; जैसे सन एक खेत में उपजाया जाय और उपज अच्छी हुई तो फसल का कुछ हिस्सा दूसरे खेत में गाड़ दिया अथवा किसी पेड़ के पत्ते लाकर गाड़ दिये गये। मद्रास की तरफ धान के खेतों में अकौन (आक) कुरंज इत्यादि के पत्ते गाड़े जाते हैं।

वर्तमान समय में आधा शीशी जो बहुतायत से बढ़ रही है उसे भी हरी अवस्था में खाद के काम में ला सकें तो अच्छा है।

इनके सिवाय लेखक ने प्रयोग करके देखा तो नदी और तालाबों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होनेवाले सेवारों का खाद भी अच्छा पाया गया।

हरे खाद की सफलता

हरे खादों की सफलता पानी पर निर्भर है, क्योंकि इनके गाड़ने के पश्चात् इनके सड़ने के लिए पानी अधिक लगता है। यदि गाड़ने के बाद पानी तीन-चार इंच हो जाय तो ये सड़ जाते हैं और नहीं तो ये पूरे सड़ते नहीं। खेतों में इनके बाद होनेवाली फसल के लिए पानी भी कम हो जाता है और दीमक के लगने का भय रहता है। इसलिए जहांतक बने हरे खाद का उपयोग सिंचाईवाली भूमि में हो सके तो अच्छा है। स्मरण रहे कि अन्य खादों की भांति हरे खाद का असर अपेक्षाकृत कमजोर खेतों में विशेष होगा।

हरे खाद के लिए खेतों में उपजाई जानेवाली फसलें—ये फसलें ऐसी होनी चाहिए जो जल्दी बढ़ सकें, जिनमें पत्ते जैसे कोमल अंग विशेष हों, और वे दालवर्ग की हों, ताकि वातावरण की नाइट्रोजन से भी लाभ उठाया जा सके।

ऐसी दालवर्ग की फसलें दो प्रकार की होती हैं—एक वे जो वर्षारंभ के समय पर बोई जाती है और दूसरी वे जो आश्विन-कार्तिक यानी सर्दी के प्रारंभ में बोई जाती हैं। वर्षारंभ में बोई जानेवाली फसलें जल्दी बढ़ती हैं और उनसे खाद भी अधिक मिलता है।

वर्षारंभ में बोई जानेवाली हरे खाद की फसलें

सन—Sannhenp, *Crotolaria juncea.*

ढेंचा—Dhaincha, *Sesbania aculeata.*

शेवरी—Shevri, *Sesbania aegyptica.*

ग्वार—Cluster, bean *Psymopsis psoraliodes.*

चवली—Cow pea, *Vigna Catiang.*

सेम—Sem, *Dolichos lablab.*

उड़िद—Urid, *Phaseolus mungo* इत्यादि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्दी के दिनों में होनेवाली दो खाद की फसलें

सेंजी—Sengi, *Melilotus parviflora.*
पीली पसेरा—Pillipasera, *Phaseolus triolbus.*
कुलथी—Kulthi, *Dolichos biflorus.*

हरे खाद की फसलों को फॉसफेट का खाद अवश्य देना चाहिए। कम-से-कम पचीस सेर फा० पे० पहुंचे इतना सुपर फासफेट या हड्डी का चूरा देना चाहिए। इससे हरे खादवाली फसल को ही नहीं इसके बादवाली फसल को भी काफी लाभ पहुंचेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरे खाद के काम में लाई जानेवाली मुख्य-मुख्य फसलों के बीज की मात्रा, बोने की रीति, फूलते समय की उपज, उसमें जल तथा अन्य खाद्य पदार्थ की मात्रा नीचे लिखी सारणी में देखिए:—

नाम फसल	मात्रा बीज प्रति एकड़	बोने की रीति	उपज प्रति एकड़ हरे पदार्थ की	जल प्रति.	खाद्य पदार्थ सूखे पदार्थ में			
					ना० %	फा.पे. %	पो०श्रा० %	चूना %
सन	३० सेर से १ मन	छींटकर	१०० से ३०० मन	७५	२.५	०.५	२.०	२.५
ढेंचा[1]	१ मन	छींटकर	१०० से २५० मन	६५	१.६	०.४	१.८	१.६
ग्वार	१५ सेर	छींटकरया कतारोंमें	१०० से २०० मन	८०	३.०	०.५	१.८	०.४
चवली	२० सेर	कतारों में	१०० से २०० मन	८०	२.५	०.७	२.७	३.०
सेंजी	२० सेर	छींटकर	१५० से २०० मन	७५	३.०	०.४	२.५	—
पिली पसेर	१५ सेर	छींटकर	१२५ से २०० मन	७५	०.५	—	—	—
उड़द	१० सेर	कतारों में	८० से १०० मन	७५	३.४	—	—	—

[1] बीज के लिए जो ढेंचा बोया जाय, उसके बीज ८-१० सेर प्रति एकड़ कतारों में वर्षारंभ के समय बोना चाहिए। कतारों में डेढ़-दो फुट की दूरी उत्तम होगी। उपज बीज १२ से १५ मन तक हो जाती है। फसल ४ व ५ महीने में तैयार हो जाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

: १३ :

अंबाड़ी[1]

Ambadi, Deccan hemp *Hibiscus cannabinus sabdariffa*

अंबाड़ी तो वैसे भारतवर्ष में सब जगह होती है, परंतु इसकी खेती विशेष रूप से दक्षिण भारत और गुजरात में होती है। हावर्ड[2] महोदय की खोज के अनुसार और थोड़े-बहुत भेद भावनानुसार पहले की पांच और दूसरे की चार उपजातियां मानी जा सकती हैं। पौधे जमीन की उर्वरा शक्ति-अनुसार आठ-दस फुट ऊंचे हो जाते हैं। पहले का सन दूसरे की अपेक्षा मजबूत होता है। दूसरे के पुट-पत्र मोटे, रस-भरे, बहुधा लाल, या बैंगनी रंग के होते हैं। इनका उपयोग चटनी मुरब्बा इत्यादि के लिए किया जाता है। इससे इस जाति को सागभाजी की वाड़ियों[3] में भी स्थान दिया जाता है। दूसरी जातियां कुछ ऐसी भी हैं, जिनके पुट-पत्र लाल या बैंगनी न होकर हरे-पीले होते हैं परंतु बहुधा लाल या बैंगनी पुटपत्रवाली ही उपजाई जाती है। पहली जाति के पुटपत्र बहुधा हरे या हरे-पीले होते हैं और उनमें रस बहुत कम रहता है।

---

[1] तागवाली फसल होने से, इस फसल की खेती का वर्णन सन की खेती के वर्णन के बाद होना चाहिए था, परंतु गलती से वहां छूट गया, इसलिए इसका वर्णन यहां दिया जाता है।

[2] Mem. Dept. Agri, India Vol IV p. 35 1911 vol VIII p. 47/192.

[3] 'साग-भाजी की खेती' पृष्ठ १७६, नवां संस्करण १९५७।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जलवायु—ऊष्ण वातावरण तथा ३०-४० इंच वर्षावाले स्थान इसके लिए उत्तम होते हैं।

जमीन और जुताई—कछार दुमट मिट्टी उत्तम होती है, परंतु बलुआ दुमट या मटियार दुमट में भी यह हो जाती है। इसे अकेली नहीं बोते। ज्वार बाजरे के साथ बोते हैं सो जो जुताई उनके लिए की जाती है वही इसके लिए भी हो जाती है।

खाद और हेर-फेर—साधारणतः खाद नहीं दिया जाता, लेकिन यदि जिस फसल के साथ इसे बोते हैं, उसे खाद दिया हुआ हो तो इसे भी उससे लाभ हो जाता है।

बीज और बोआई—इसके बीज बाजरे के बीज के साथ मिलाकर बो दिये जाते हैं। प्रति एकड़ बाजरे के बीज में एक सेर मिला देना काफी होगा। बाजरा कई जगह छींटकर बोया जाता है, सो इसके बीज भी छींट दिये जाते हैं। जहां कतारों में बोते हैं, वहां इसे चाहे बीज में मिलाकर बोयें या इसकी अलग-अलग कतारें बाजरे की पंक्तियों के बीच बो सकते हैं। कपास और ज्वार के खेतों के किनारों पर भी इसे बो देते हैं इसके बोने का समय वर्षारंभ है।

निंदाई और देखभाल—जिस फसल के साथ बोते हैं, उसकी निंदाई और देखभाल होती है। वही इसके लिए भी है।

सिंचाई—चूंकि ये बरसात में उपजाई जाती है, इसलिए सींचने की आवश्यकता नहीं होती; परंतु जहां वर्षा बहुत कम होती है और जहां ज्वार बाजरा भी सिंचाई से उपजाया जाता है, वहां आवश्यकतानुसार, सींचना होगा।

फसल की तैयारी और उपज—कार्तिक (अक्तूबर, नवंबर) तक फसल तैयार हो जाती है। इसके पौधे उखाड़ लिये जाते हैं और छोटी-छोटी पिंडियां बांधकर सूखने के लिए छोड़ देते हैं। जब पौधे सूख जाते हैं तो उन्हें पीटकर उनसे पत्ते और बीज छुड़ा लिये जाते हैं। इसके बाद पिंडियों को पानी में दबाना होता है। सन की अपेक्षा इन्हें पानी में कुछ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अधिक दिनों तक रखना होता है। पहले पिंडियां पानी में खड़ी रखी जाती हैं और दो-तीन दिन बाद आड़ी करके दबाते हैं। जब पिंडियां इतनी गल जाती हैं कि ताग छूट जाय तो फिर इनका 'सन' (ताग) वैसे ही छुड़ाया जाता है जैसे सन या पाट का। मौलीसन महोदय के अनुमानानुसार प्रति एकड़ उपज दस-बारह मन सन और साठ-सत्तर मन डंठल हो जाते हैं। इसका सन (ताग) सन के ताग से सफेद और मुलायम होता है, परंतु उतना मजबूत नहीं होता।

वितरण और व्यवसाय—घर-खर्च जितना रखकर शेष स्थानीय व्यापारियों द्वारा बेचा जाता है।

उपयोग और गुण—कोमल पत्ते तरकारी के काम में लाये जाते हैं। जो ताग बहुत सफेद और मुलायम होता है, टाट वगैरह बनाने के लिए उत्तम होता है। रस्सों के लिए यह उत्तम नहीं होता। सन के ताग के रस्सों से इसके रस्से कमजोर होते हैं।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक 1821
दिनांक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
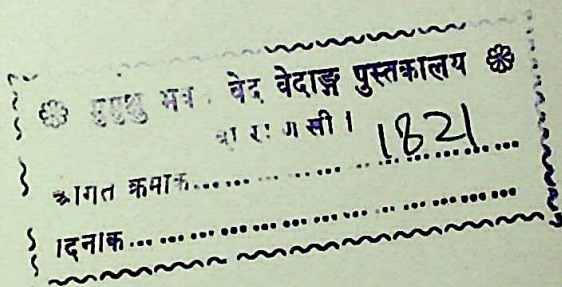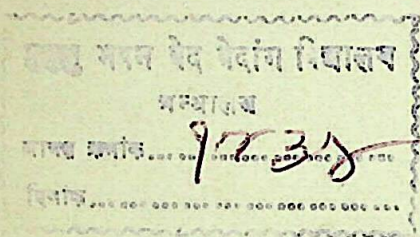
हमारा ग्रामोपयोगी साहित्य

१. कृषिज्ञान कोष
२. साग-भाजी की खेती
३. फलों की खेती
४. अन्नों की खेती
५. दलहन की खेती
६. तिलहन की खेती
७. रोक-फसलों की खेती
८. चारादाना
९. हमारे गांव की कहानी
१०. पशुओं का इलाज
११. गांव के उद्योग-धंधे
१२. गांव सुखी, हम सुखी
१३. खादी द्वारा ग्रामविकास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri